Chapter-5

पंचम अध्याय

****

इतिहास से प्रेरित कृतियाँ

-**********************

- रंग में भंग
- विकट भट
- गुरुकुल
- सिद्धराज
- अर्जन और विसर्जन

अंतरंग विवेचन :- कथावस्तु,

वस्तुगत आधार -इतिहास में प्राप्त सामग्री- कृतियों में वर्णित वस्तु - तुलना - प्रेरणा, मौलिकता और आधुनिकता- अभिव्यक्ति पक्ष- भाषा (मुहावरें, लोकोक्तियाँ, सूक्तियाँ), संवाद योजना, रस योजना, बिम्ब विधान, अलंकार विधान, छन्द विधान.

235

कविवर मैथिलीशरण गुप्त ने सुनहले अतीत का गौरवगान करके वर्तमान को समुन्नत करने का प्रयास किया है. विशेष रुप से ऐतिहासिक कथानकों के द्वारा उन्होंने वर्तमान के सम्मुख तप, त्याग, शौर्य और बलिदान के आदर्श उपस्थित किये. तथा जन मानस को देशप्रेम एवं राष्ट्रीयता की लहरों से आंदोलित कर दिया. इस अध्याय में हम उनकी इसी प्रवृत्ति विशेष से प्रेरित रचनाओं का अध्ययन प्रस्तुत कर रहे हैं.

कथावस्तु

रंग में भंग

" रंग में भंग " कवि के निर्माण- काल की काव्य कृति है. इस ऐतिहासिक खण्डकाव्य का प्रणयन बूंदी और चितौड़ की घटना को लेकर हुआ है . बूंदी- नरेश वरसिंह के भाई लालसिंह की पुत्री का विवाह चितौड़ के राणा खेतल से होता है. अंतमें, बिदाई के समय चितौड़ का राजकवि बूंदी के राजा के व्यंग्य से अपमानित होकर आत्महत्या करता है. जिसके फल-स्वरुप वर-वधू पक्ष के बीच घमासान युद्ध होता है. जिसमें राणा खेतल ने बरात के सदस्यों के साथ वीरगति पाई. पति की मृत्यु के बाद राजकन्या भी सती हो गई. राणा लाखा, अपने पूर्वजों के प्रतिशोध की भावना से बूंदी के दुर्ग को तोड़ने की प्रतिज्ञा करता है. तब कृत्रिम दुर्ग बनवाकर उसको तोड़ने के लिए राजा को उद्यत किया जाता है. हाडा कुंभ, अपनी मातृभूमि का अपमान सह नहीं पाता और अंतमें वह अपने प्राणों की आहुति दे देता है. इसका " कथानक अपने संदेश-वाहन में सर्वथा समर्थ है वह यह कि मानापमान भावना की अवांछित अतिरंजना मानव के अपने विकास में बाधक ही नहीं अपितु उसके ह्रास के लिए उत्तरदायी है । " [1]

विकट भट

इसका कथानक राजपूत इतिहास से संबंधित है. इसमें आन पर जान देनेवाले राजपूतों के कार्यों का वर्णन किया गया है. एक दिन जोधपुर का

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता- कमलाकान्त- पृ. ।।

236

राजा विजयसिंह देवीसिंह को जो कि पोकरण का सामन्त है, पूछता है कि अगर वह रुठ जाय तो क्या होगा ? इसके प्रत्युत्तर में देवीसिंह ने कहा कि वह " नवकोटि मारवाड़ " को उलट सकता है. इस उत्तर के लिए उसको दूसरे- दिन मौत के घाट उतार दिया गया. उसकी मृत्यु के बाद, उसके पुत्र सबलसिंह ने भी वीरगति प्राप्त की. देवीसिंह का पौत्र सवाईसिंह भी अपने पूर्वजों के वचन पर दृढ़ रहता है. उसने निडर होकर कुल- गौरव के अनुरुप ही उत्तर दिया जिससे विजयसिंह भी प्रभावित हुए और उन्होंने सवाईसिंह को सामान्त बनाया.

गुरुकुल

" गुरुकुल " में गुरुनानक, आदि सिक्खों के दस गुरुओं के जीवन चरित्र का वर्णन किया गया है. गुप्तजी ने हिन्दू और सिक्ख धर्म की विषमता को देखकर उसके निराकरण का प्रयत्न किया है. कवि ने इस प्रबन्ध- काव्य का प्रणयन एक सिक्ख सज्जन की प्रार्थना एवं अनुरोध पर किया है. इस काव्य के अंत में बंदा वैरागी और अन्य सिक्ख- संप्रदाय के वीरों की गाथा का वर्णन हुआ है. अर्थात यहाँ कवि ने सिक्ख गुरुओं के आदर्श जीवन की झांकी प्रस्तुत की है. संक्षेपमें, गुप्तजी ने सिक्ख- संप्रदाय के इतिहास को प्रस्तुत किया है.

सिद्धराज

" सिद्धराज " गुप्तजी की उत्कर्षकालीन रचना है. इस रचना का कथानक मध्यकालीन इतिहास से सम्बन्धित है. इस खण्डकाव्य की कथा पाँच सर्गों में लिखी गई हैं. सिद्धराज जयसिंह इसकाव्य का प्रधान पात्र है. इसकी कथा भी सिद्धराज के जीवन से ही सम्बन्धित है. इसके प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय सर्ग के मध्यतक सिद्धराज के शौर्य का वर्णन किया गया है. यहाँ उसने मातृभूमि को प्राधान्य दिया है. तृतीय सर्ग में उसकी पाशविक वृत्ति का परिचय मिलता है. लेकिन बादमें, चतुर्थ सर्ग में उसकी उदार दृष्टि का पुनः परिचय होता है. खंगार और उसके दो बच्चें की हत्या की बात से

उसे कष्ट होता है. वह कांचनदे का विवाह अघोराज से करता है. इस प्रकार अंतमें वह एक सच्चा पिता बन जाता है.

अर्जन और विसर्जन

" अर्जन " में विक्रमी सातवीं शती की घटना का वर्णन किया गया है. अरब सेना दमिश्क पर आक्रमण करती है जिसमें दमिश्क का सेनानायक टमास भी युद्ध में काम आता है. दमिश्क में एक प्रेमी प्रेमिका इउडोसिया तथा जोनस रहते थे. इउडोसिया देशभक्त थी. इस युद्ध में अरब सेना की विजय होती है. तब जोनस इउडोसिया को प्राप्त करने के लिए मुसलमान धर्म को अपना लेता है. लेकिन इउडोसिया ऐसे पति का मुख देखना भी नहीं चाहती है. अंतमें, वह आत्महत्या करती है.

" विसर्जन " की घटना विक्रमी आठवीं शती की है. और वह उत्तरी अफ्रीका से संबन्धित है. अफ्रीका के मूर अरबों के आक्रमण को निष्फल बनाकर विजयोत्सव मना रहे थे. उसी समय रानी " काहिना " ने लोगों को अरबों से सावधान रहने का आदेश दिया. मूरों ने स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए अपनी सभ्यता एवं संस्कृति का विसर्जन किया.

वस्तुगत आधार

रंग में भंग

" रंग में भंग " के लिए कवि ने बूंदी एवं चितौड़ के नरेशों की महत्वपूर्ण घटना को आधार बनाया है. कवि ने कर्नल टाड लिखित " राजस्थान का इतिहास " से इस विषय के लिए ऐतिहासिक वृत्तांत लिया है. बूंदी के स्व. लज्जाराम शर्मा से कवि को कथावस्तु संबंधी सूचनायें प्राप्त हुई हैं. इसके पूर्वार्द्ध में चितौड़ के राणा खेतल के विवाह का वर्णन किया गया है. राणा खेतल का विवाह बूँदी के राजा वरसिंह के भाई लालसिंह की दुहिता से होता है. उनके बीच विग्रह होता है. जिसके फलस्वरुप हाड़ा रानी सती होती है. लेकिन इसका कोई उल्लेख टाड लिखित " राजस्थान का इतिहास "

में नहीं मिलता है . इसमें हामाजी के दो लड़के वीरसिंह और लाला का उल्लेख है. हामाजी के बड़े लड़के वीरसिंह ने बूँदी का राज्य संभाला और पन्द्रह साल तक राज्य किया. और लाला ने खटकड पर राज्य किया.

इस काव्य का उत्तरार्द्ध बूँदी के " नकली किले " से संबंधित है.

इतिहास में इस घटना का वर्णन इस प्रकार हुआ है-

चितौड़ के राणा ने हामाजी को लिखा कि " कुछ दिनों के बाद हमारा राज्य निर्बल हो गया था. लेकिन कोई भी हमारे राज्य के नगरों और ग्रामों पर बलपूर्वक अधिकार नहीं कर सका. इसलिए बूँदी राज्य को चितौड़ की अधीनता स्वीकार करनी पड़ेगी. " [1] हाड़ा राजा हामाजी ने यह स्वीकार किया कि दशहरा और होली के अवसर पर बूँदी का राजा चितौड़ में उपस्थित रहेगा. अभिषेक के समय राणा को बूँदी में राजतिलक करने का अधिकार भी दिया गया. लेकिन बूँदी का राजा चितौड़ की अधीनता के नियमों का पालन करना नहीं चाहता था. इससे राणा को संतोष नहीं मिला . तब उसने अपने सामन्तों की सेनाओं के साथ बूंदी पर आक्रमण किया. राणा ने बूँदी के निमोरिया नामक स्थान पर मुकाम किया. हामाजी ने भी अपने वंश के पाँच सौ वीरों की सेना युद्ध के लिए भेजी. चितौड़ के अनेक सामन्त मारे गये. हामाजी की विजय हुई और वे बूँदी लौट गये. पराजित राणा ने चितौड़ जाकर अपमान का बदला लेने के लिए यह प्रतिज्ञा की कि " जबतक मैं बूँदी पर अपना अधिकार न कर लूँगा तबतक अन्न-जल ग्रहण न करूँगा । " [2] राणा की इस प्रतिज्ञा को सुनकर सामन्तों ने चितौड़ में नकली किला बनवाया. चितौड़ में पठार के हाड़ा लोगों की एक सेना थी, जिसका सेनापति कुम्भावैरसी था. कुम्भावैरसी ने कहा कि " बूँदी और उसके दुर्ग के कृत्रिम होने पर भी हम उसकी रक्षा करेंगे. यहाँ

---

1. राजस्थान का इतिहास- कर्नल टाड, पृ. 739-40
2. वही, पृ. 740

239

पर हमारी जातीय मर्यादा का प्रश्न है । "[1] कुम्भावैरसी ने अपने सैनिकों के साथ युद्ध करते हुए वीरगति प्राप्त की. और राणा ने इस कृत्रिम दुर्ग पर विजय प्राप्त की.

" रंग में भंग " का उत्तरार्द्ध इस प्रकार है --

राणा खेतल की मृत्यु के पश्चात राणा लाखा का अभिषेक हुआ. वह चितौड़ का राजा हुआ. उसने यह प्रण किया कि-

" दुर्ग बूँदी का स्वयं तोड़े बिना जो अब कहीं
ग्रहण अन्नोदक करुँ तो मैं प्रकृत क्षत्रियनहीं । "[2]

राणा की इस प्रतिज्ञा को सुनकर सचिवों ने चितौड़ में ही कृत्रिम दुर्ग बनवाया. और उसे तोड़ने के लिए कहा गया. उसी समय बूंदी निवासी भृत्य वीर हाड़ा कुम्भ आखेट से आ रहा था, वह इस कृत्रिम दुर्ग और इसको बनवाने के कारण से अत्यधिक व्यथित हुआ. वह अपनी मातृभूमि के तिरस्कार को सह नहीं पाया. राणा उसको तोड़ने के लिए आया. लेकिन कुम्भ बूँदी के कृत्रिम दुर्ग को भी तोड़ने देना नहीं चाहता था. कुम्भ उसकी रक्षा करता था. और राणा उसपर विजय प्राप्त करना चाहता था. अंतमें वीर कुम्भ और उसके साथी सैनिकों ने वीरगति प्राप्त की.

<u>तुलना</u>

" रंग में भंग " में राणा खेतल की मृत्यु का बदला लेने के लिए राणा लाखा प्रतिज्ञा करता है जबकि इतिहास में इस घटना का उल्लेख इस प्रकार हुआ है कि जब बूँदी के राजा ने चितौड़ की अधीनता को स्वीकार नहीं किया. तब राणा निमोरिया तक चढ़ आता है एवं बूँदी के सैनिकों से युद्ध होता है जिसमें राणा की पराजय होती है. तब वह चितौड़ जाकर प्रण

---

1. राजस्थान का इतिहास- कर्नल टाड, पृ. 74।
2. रंग में भंग, पृ. 24

240

करता है. लेकिन राणा के इस प्रण से सचिव चिन्ता में पड़ गये क्योंकि सिर्फ प्रण से कुछ होनेवाला ही नहीं था. इसीलिए सचिवों की इच्छानुसार चितौड़ में ही बूँदी का कृत्रिम दुर्ग बनवाया और राणा को इसे तोड़ने को बाध्य किया गया. " रंग में भंग " एवं इतिहास दोनों में इस घटना का उल्लेख है. गुप्तजी के मतानुसार जब वीर कुम्भ आखेट से आ रहा था तब उसने बूंदी के कृत्रिम दुर्ग को देखा. जबकि इतिहास में वीर कुम्भ नहीं बल्कि कुम्भावैरसी लड़ता है. कुम्भावैरसी चितौड़ में पठार के हाड़ा लोगों की एक सेना थी उसका सेनापति था.

कुम्भ कृत्रिम दुर्ग की रक्षा करता था एवं राणा उसको तोड़ना चाहता था. अंतमें वीर कुम्भ एवं उसके साथी लोगों ने वीरगति पाई. इतिहास के अनुसार कुम्भावैरसी ने अपने सैनिकों के साथ युद्ध करते हुए वीरगति प्राप्त की. इसप्रकार दोनों में राणा की विजय का उल्लेख है.

विकट भट

राजपूत इतिहास की कथा इस काव्य का आधार है. आचार्य द्विवेदीजी ने 14-5-1910 ई० को गुप्तजी को पत्र लिखा था. इस पत्र के द्वारा उन्होंने कवि को बुन्देलखंड तथा राजपूताने की घटनाओं पर काव्य रचना करने का आदेश दिया था. यह काव्य रचना भी टाड के " राजस्थान का इतिहास " में उल्लेखित घटना के आधार पर लिखी गई है. कवि ने इस रचना में मध्ययुगीन राजपूती शौर्य का वर्णन किया है.

जब विजयसिंह मारवाड़ के सिंहासन पर ह बैठा तब मुगल बादशाह के शासन की शक्तियाँ क्षीण हो गयीं थीं. सभी राजा अपने को स्वतंत्र समझते थे. फिरभी विजयसिंह ने प्राचीन प्रथा के अनुसार अपने अभिषेक का समाचार दिल्ली के बादशाह को भेजा. विजयसिंह का मराठों की एक छोटी सी सेना से पराजय हुआ. मराठी सत्ता के उपद्रव से कृषक एवं व्यवसायी लोग सदा डरते थे.

विजयसिंह निर्बल हो गया था. उसके राज्य के सामन्त स्वतंत्र हो गये थे. विजयसिंह की मान मर्यादा नष्ट हो गई थी. उसके ~~सामंतो~~ सामन्तों में स्वच्छन्दता पैदा हो गई थी. पोकरण के सामंत की मृत्यु हुई तब उसको संतान नहीं थी. इसलिये राजा अजितसिंह के पुत्र देवीसिंह को दत्तक लिया. देवीसिंह को पोकरण की जागीर का दत्तक पुत्र बनाया गया. देवीसिंह का ध्यान मारवाड़ की ओर था. विजयसिंह की निर्बलता का लाभ राज्य के सामंत उठा रहे थे. धाभाई जग्गू (विजयसिंह की धात्री का पुत्र) ने कैदी सामंतों को कहा- " आप लोग इस संसार को छोड़कर परलोक यात्रा के लिए तैयार हो जाइए। "[1] तब सामंतों ने कहा कि गोलियों से नहीं बल्कि तलवार से हमारे प्राणों का अंत करना. देवीसिंह को गोली अथवा तलवार से मारने का साहस किसी ने नहीं किया. उसको मिट्टी के प्याले में विष दिया गया. तब उसने सोने के प्याले में विष पीने का आग्रह किया. जब उसको मिट्टी के पात्र से पीने के लिए विवश किया गया तब उसने दीवार पर सिर पटककर अपने जीवन का अंत किया. इस घटना के पहले किसी ने देवीसिंह को पूछा था, " आपकी वह तलवार कहाँ है, जिसके नीचे आप मारवाड़ के सिंहासन को समझते थे ? "[2] देवीसिंह ने कहा , " मेरी वह तलवार इस समय पोकरण में मेरे बेटे सबलसिंह की कमर में बँधी हुई है. "[3] देवीसिंह की मृत्यु के बाद सबलसिंह पोकरण के शूरवीर राजपूतों को लेकर पिता के अपमान का बदला लेने के लिए गया. सबलसिंह ने नगरपाली पहुँचकर लूटमार की एवं वहाँ आग लगवादी. इसके बाद उसने बीलाड़ा पर आक्रमण किया. यहाँ गोलों की वर्षा हुई जिसमें सबलसिंह की मृत्यु हुई. दूसरे दिन उसके शव को लूनी नदी के किनारे पर जलाया गया. मारवाड़ राज्य के सामन्त और विजयसिंह के बीच संघर्ष रुक गया.

---

1. राजस्थान का इतिहास- कर्नल टाड, पृ. 46।
2. वही, पृ. 46।
3. वही, पृ. 46।

242

विजयसिंह की स्वाभाविक निर्बलता दूर हो गई. उसने साहस एवं पराक्रम का परिचय दिया. उसने खोसा एवं सराई जाति पर और अमरकोट के दुर्ग पर विजय प्राप्त की. मारवाड़ की सीमा पर जो भाग जैसलमेर में मिला लिया था उस पर उसने अधिकार जमा लिया. मारवाड़ के बुरे दिनों का अंत हो गया. राज्य में किसी प्रकार का विरोध और संघर्ष नहीं था. परिणामस्वरुप विजयसिंह विलासप्रिय बन गया. वह ओसवाल जाति की एक युवती पर आसक्त हुआ और उसने उसको उपपत्नी बना ली. उस युवती को यह विश्वास था कि राजा उसके लड़के को राज्य देगा. लेकिन उसको कोई लड़का पैदा न हुआ तो विजयसिंह ने मानसिंह को राज्य देने का आदेश दिया. सामंतों ने भीमसिंह को राज्य देने की कोशिश की. विजयसिंह ने अपने पुत्र जालिमसिंह को भीमसेन पर आक्रमण करने के लिए कहा. इस युद्ध में भीमसिंह की हार हुई . मानसिंह को सिंहासन पर बैठाया गया. तब देवीसिंह का पौत्र सवाईसिंह पोकरण का सामन्त था. सवाईसिंह धौकलसिंह को राज्य देना चाहता था और मानसिंह को भ्रष्ट करना चाहता था. सवाईसिंह अपने पितामह का बदला लेने के लिए मानसिंह एवं मारवाड़ का विनाश करना चाहता था. लेकिन इसके द्वारा उसका ही सर्वनाश हुआ. मानसिंह, सवाईसिंह की मृत्यु के बाद भी जीवित रहा. उसके शासनकाल में मारवाड़ के सामन्तों ने सवाईसिंह के पुत्र सालिमसिंह को जोधपुर का सामन्त बनाया.

" विकट भट " का आरंभ विजयसिंह एवं देवीसिंह के वार्तालाप से हुआ है. जब विजयसिंह ने देवीसिंह को पूछा कि " तुम अगर मुझसे रुठ जाओ तो क्या हो सकता है ? " तब देवीसिंह ने कहा कि मैं सिर्फ जोधपुर को ही नहीं बल्कि मारवाड़ को भी उलट सकता हूँ. विजयसिंह की आज्ञा से उसको बाँध दिया गया एवं उसको मारने के लिए मिट्टी के ठीकरे में अफीम भेजी गयी. उसने अपने अपमान का अनुभव किया. उसने जोर से एक झटका दिया जिसे बन्धन टूट गया और उसका मस्तक सँभल नहीं पाया. टकराने से

उसकी मृत्यु हुई. उसकी मृत्यु के बाद सबलसिंह ने भी सैनिकों के साथ वीरगति पाई. सबलसिंह की मृत्यु के बाद आहुआ के जैतसिंह को मरवाया. इसके बाद, सवाईसिंह को दरबार में बुलाया गया लेकिन उसकी वीरता एवं गौरव से राजा प्रभावित हुआ एवं उसने सवाईसिंह को आशीर्वाद दिया.

तुलना

" विकट भट " और इतिहास- दोनों में उसकी मृत्यु के कारण अलग हैं लेकिन उसकी मृत्यु सिर पटककर ही हुई है. अर्थात उसने आत्महत्या की है इसका उल्लेख गुप्तजी के काव्य में एवं इतिहास में समान मिलता है.

देवीसिंह की मृत्यु के बाद उसका पुत्र सबलसिंह पोकरण के शूरवीर राजपूतों को लेकर पिता के अपमान का बदला लेने के लिए गया. उसने नगरपाली पहुँचकर लूटमार की एवं आग लगवादी. इसके बाद उसने बीलाड़ा पर आक्रमण किया. वहाँ गोलों की वर्षा हुई जिसमें उसकी मृत्यु हुई. उपरोक्त वर्णन इतिहास से मिलता है. गुप्तजी की रचना में इस बात का उल्लेख है कि देवीसिंह की मृत्यु के पश्चात उसका पुत्र सबलसिंह सैनिकों के साथ गया. जहाँ युद्ध में उसने वीरगति प्राप्त की. अर्थात दोनों में उसकी वीरगति का उल्लेख मिलता है. " विकट-भट " में इसका उल्लेख नहीं है कि उसने कहाँ युद्ध किया.

विजयसिंह के पोकरण जीत लेने के पश्चात आहुए के सरदार जैतसिंह से पूछते हैं -

" जैतसिंहजी क्या कहीं कोई ठौर ऐसा है,
डंके को बजाकर मैं जाऊँ जहाँ चढ़के ? " 1

यह सुनकर आहुए के सरदार जैतसिंह ने कहा ऐसा कोई ठौर नहीं है कि जहाँ जोधपुर के राजा डंके को बजाके चढ़ें. विजयसिंह ने बार बार पूछा तब जैतसिंह ने कहा कि -

" जैसे है उदयपुर, जयपुर है, जहाँ-
जावें तो हुजूर के भी दाँत खट्टे हो जावें । " 2

---

1. विकट भट, पृ. 9
2. वही, पृ. 10

244

विजयसिंह ने आहुए पर चढ़ाई की. तीन दिन के बाद भी जब वह टूटा नहीं तब जैतसिंह को जोधपुर बुलाया गया तथा रातमें उसको मरवा डाला गया. जोधपुर के पोकरण और आहुआ दो अर्गल थे. दोनों टूट गये अब यवनों, मराठों को रोकनेवाला कोई नहीं रहा. अब राजा विजयसिंह भी पछताने लगे लेकिन अब क्या ? राजा ने सवाईसिंह को बुलाने के लिए भेजा. उससे प्रभावित होकर राजा ने उसको आशीर्वाद दिया. ऐसा वर्णन " विकट भट " में मिलता है. गुप्तजी ने यहाँ तक की घटना को ही काव्य का विषय बनाया है.

मानसिंह सिंहासन पर बैठा तब देवीसिंह का पौत्र सवाईसिंह पोकरण का सामंत था. जगतसिंह (जयपुर) और मानसिंह के बीच युद्ध हुआ जिसमें मानसिंह की पराजय हुई. बादमें सवाईसिंह अपने पितामह का बदला लेने के लिए मानसिंह एवं मारवाड़ का विनाश करना चाहता था. लेकिन उसके द्वारा उसका नाश हुआ. मानसिंह, सवाईसिंह की मृत्यु के बाद भी जीवित रहा. मानसिंह के शासनकाल में ही मारवाड़ के सामंतों ने सवाईसिंह के पुत्र सालिमसिंह को जोधपुर के शासन का प्रधान बनाया. इसका वर्णन गुप्तजी ने अपनी रचना में नहीं किया है.

गुरुकुल

गुप्तजी ने अपनी इस कृति के लिए निम्न ग्रंथों का आधार लिया है -

इस पुस्तक का नामकरण भी कवि " रघुवंश " के आधार पर " ~~गुरुकुल~~ गुरुवंश " रखना चाहते थे. लेकिन एक मित्र की इच्छानुसार " गुरुकुल " रखा गया.

कवि ने सुमेरसिंह जी के विषय में श्रीयुत शिवनन्दनजी सहाय कृत " सिक्ख गुरुओं की जीवनी " से आधार लिया है.

महाराज रणजीत के पौत्र के बारे में श्रीयुत वेणीप्रसाद लिखित " महाराज रणजीतसिंह " नामक रचना से लिया है. चमकौर युद्ध का वर्णन

डा० गोकुलचन्द नारंग अपने " सिक्खों के परिवर्तन " नामक कृति में करते हैं.

" बाबू शिवनन्दन सहायजी लिखित " सिक्ख गुरुओं की जीवनी " में जैतीजी के मरण का उल्लेख है. " उनके सिवा पण्डित ज्वालादत्त शर्मा कृत " सिक्खों के दशगुरु " एवं स्व० नन्दकुमार देवजी शर्मा की कई पुस्तकों से भी लेखक ने लाभ उठाया है. " [1]

इस प्रकार इसका आधार कवि ने सिक्ख गुरुओं की जीवनी एवं उनके कृत्यों को बनाया है. इतिहास में " गुरुकुल " के गुरुओं के जीवन-वृत्तांत एवं घटनाओं का वर्णन इस प्रकार मिलता है.

गुरुनानक - गुरुनानक का जन्म सन 1526 के वैशाख की तीज को हुआ था. उन्होंने यज्ञोपवीत धारण करने से इन्कार कर दिया और कहा कि उनके लिए एक प्रभु की भक्ति ही काफी है. उनको प्रभु में श्रद्धा थी. वे ईश्वर के गीत गाते थे. वे सन्तों को खिलाते थे और उनके खेत चरे जाते थे. उनके बहनोई की मदद से उनको नौकरी मिली थी. उनको श्रीचन्द एवं लक्ष्मीदास नामक दो पुत्र थे . उनका मन सदैव प्रभु- भक्ति में लगा रहता था.

एक दिन सुबह में जब वे बाईन नदी के तट पर गये तब वहाँ के दृश्य को देखकर वे बेसुध हो गये. उनमें परिवर्तन आ गया. उन्होंने धन गरीबों को दे दिया. उनका कहना था कि कोई हिन्दू नहीं है और कोई मुसलमान नहीं है. वे मस्जिद में भी जाते थे. लोगों की धारणा थी कि नानक के मुख से ईश्वर ही बोलते हैं.

बादमें, उन्होंने दौलतखान की नौकरी छोड़ दी और मिशन में सारे जगत के शिक्षक बनकर प्रवेश किया. इस समय उनकी उम्र सत्ताइस साल की थी.

नानक सैयदपुर में लालो नामक एक सुतार के यहाँ रहे. वे ऊँच-नीच के भेदभाव के विरोधी थे. उन्होंने तो मानवता को महत्व दिया. बादमें,

---

1. गुरुकुल, पृ. 30

नानो को सिक्ख-धर्म के प्रचार के लिए उत्तर पंजाब का मंत्री पद दिया गया.

दिल्ली के बाद वे हरद्वार गए. गंगा के पवित्र जल में अनेक लोग स्नान कर रहे थे और अपने पूर्वजों को अंजलि दे रहे थे. यह देखकर नानक पश्चिम की ओर जल फेंकने लगे. तब अन्य यात्रिकों ने इसका कारण पूछा, इसके प्रत्युत्तर के रुप में नानक ने कहा कि जब आपका जल स्वर्ग में पहुँच सकता है तब मेरा यह जल खेतों में नहीं पहुँचेगा कि जो यहाँ से दो सौ मील ही दूर है.

यहाँ से वे बनारस और आसाम गए. उन्होंने दूसरी यात्रा दक्षिण की की. जब वे उत्तर में गए तब " गोरखमाता " में अनेक योगियों से उनकी भेंट हुई. ऋषियों एवं नानक के बीच धर्म से संबंधित अनेक बातें हुई जिसमें गुरु की विजय हुई. बादमें, यह स्थान " नानकमाता " के नाम से प्रसिद्ध हुआ.

वे कैलाश पर्वत पर गये. वहाँ उन्होंने कहा कि उनकी इच्छा मनुष्यों की सेवा करना है और उपदेश देना है जिससे वे लोग सच्चे धर्म को समझ सकें. वे वहाँ से लदाख, श्रीनगर, जम्मू और सियालकोट होकर लौट आये.

गुरुनानक ने चौथी यात्रा पश्चिम की की. जब वे मक्का गये तब वे मस्जिद में काबा की ओर पैर रखकर सो गये. यह देखकर एक आदमी ने कहा कि तुम क्यों भगवान की ओर पैर रखकर सो गए हो ? तब गुरु ने कहा कि जिस दिशा में ईश्वर न हो उस दिशा में मेरे पैर रख दीजिए. वे बगदाद से भारत लौट आये. उस समय बाबर ने पंजाब पर तीसरी बार आक्रमण किया था.

संक्षेप में, उन्होंने युवावस्था में कुछ दिनों के लिए नौकरी की. बादमें सारे देश में घूमकर उपदेश दिया. एवं एक नये धर्म की स्थापना की. उन्होंने अगंद को गद्दी दी. 22 सितम्बर सन् 1539 को उनकी मृत्यु हुई.

गुरु अगंद - गुरु अगंद का जन्म सन् 1504 के मार्च महीने में हुआ था. वे फेरु के पुत्र है. उनका विवाह पन्द्रह वर्ष की अवस्था में खीवी से हुआ. उनके दो पुत्र और दो पुत्रियाँ थीं. वे गुरुनानक के उपदेश से प्रभावित हुए और उन्होंने भी नानक का मार्ग अपना लिया. नानक के उपदेशों को " गुरुमुखी " में स्थान दिया. उन्होंने गुरु नानक की तरह अपने शिष्य अमरदास को गद्दी दी. उनकी मृत्यु 29 मार्च सन् 1552 को हुई.

गुरु अमरदास - गुरु अमरदास का जन्म 5 मई सन् 1479 में हुआ था. उनका विवाह चौबीस वर्ष की अवस्था में हुआ. उनके मोहन और मोहरा नामक दो पुत्र थे एवं दानी और भानी नाम की दो पुत्रियाँ थीं. गुरु को सादगी पसंद थी. उनका जीवन भक्तिमय था, जिससे अनेक मुसलमान भी उनके उपदेश में श्रद्धा रखते थे. बादशाह अकबर गुरु को गोइन्दवाल में मिला. उसने गुरु को भोजनगृह के लिए भेंट देने की इच्छा व्यक्त की लेकिन गुरु ने इन्कार किया. नियम ऐसा था कि जो व्यक्ति गुरु से मिलना चाहे उसे वहाँ खाना पड़ता था. अकबर एवं हरीपुर के राजा को भी उनके भोजनगृह में खाना पड़ा था.

गुरु रामदास - रामदास का जन्म सोढी परिवार में 24 सितम्बर सन् 1534 में हुआ था. उन्होंने अमरदास की पुत्री भानी से विवाह किया था. अमरदास की पुत्री और रामदास की पत्नी ने अपने पिता से यह वचन लिया था कि गद्दी उसके वंश में ही रहे. अकबर रामदास का सम्मान करता था, जिससे रामदास को भूभाग मिला था. उन्होंने सरोवर खुदवाया कि जो अमृतसर के नाम से प्रसिद्ध है.

गुरु अर्जुन - गुरु रामदास ने अपने सबसे छोटे पुत्र अर्जुन को गद्दी दी. उसका जन्म 15 अप्रैल सन् 1563 में हुआ था. उन्होंने अपनी संपत्ति अपने भाइयों को दे दी.

अर्जुन ने सुवर्ण मन्दिर की स्थापना की. सामाजिक सुधार की दृष्टि से उन्होंने हेमा चौधरी से विवाह किया. सिक्खों की संख्या बढ़ती ही जाती थी. पंजाब में शायद ही कोई ऐसा गाँव या शहर होगा कि जहाँ सिक्ख न हो. गुरु ने आदि गुरुओं के और पन्द्रह हिन्दुओं और पन्द्रह मुसलमान सन्तों के लेखों का संकलन अपने पवित्र ग्रंथ में किया. यह ग्रंथ इकतीस भागों में लिखा गया है. इसके प्रथम भाग में गुरुओं के लेख संकलित किए गए

248

हैं, इसका आरंभ कबीर से और अंत मुसलमान संत फकीर के लेख से हुआ है. इस ग्रन्थ के उपसंहार में सत्य एवं शान्ति को महत्व दिया गया है. इसका अनुवाद भारतीय एवं विदेशी भाषाओं में हुआ है. इसको पढ़कर गुरु के विरोधियों ने अकबर को कहा कि गुरु ने एक ऐसी पुस्तक लिखी है जो मुसलमानों के विरुद्ध है. बादमें, अकबर गुरु को गोइन्दवाल में मिले लेकिन अकबर को ऐसी कोई विरोधी बात नहीं मिली. अकबर अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ. इसके प्रकाशित होने के एक साल पश्चात 1605 में अकबर की मृत्यु हुई. अकबर के बाद जहाँगीर को गद्दी मिली. जहाँगीर का पुत्र खुसरो पिता का विरोधी बन बैठा था. तब उसके विरोधियों ने जहाँगीर से कहा कि यह गुरु से मिला हुआ है. तब गुरु को बन्दी बनाकर अनेक प्रकार के कष्ट दिये गये. बादमें, उनकी हत्या कर दी गई.

गुरु हरगोविन्द - हरगोविन्द अपने पिता गुरु अर्जुन की मृत्यु के बाद ग्यारह साल की अवस्था में गद्दी पर बैठे. गुरु संत एवं ज्ञानी थे. अमृतसर के चारों ओर दीवारें खड़ी कर दी गईं. इ.स. 1609 में सिक्खों के लिए एक सभा-गृह की रचना की गई. जहाँ प्रार्थना होती थी. सुवर्णमन्दिर में कीर्तन होता रहता था. गुरु को ग्वालियर में बंदी बनाया गया. जब मुसलमानों ने राज्यकर्ता के विरुद्ध आवाज़ उठायी तब उनको मुक्त किया गया. इसके बाद राजा ने गुरु के मित्र बनने का प्रयत्न किया. जब राजा को पता चला कि चन्दूशाह की इच्छा से गुरु अर्जुन का वध हुआ है और हरगोविन्द को बंदी बनाया गया है. तब उसकी लाहौर में हत्या की. हरगोविंद ने पंजाब और अन्य राज्यों में उपदेश दिया. उस समय अनेक मुसलमानों ने सिक्ख धर्म को स्वीकार किया.

गुरु को चार युद्धों में विजय मिली. वे तो सिर्फ अपनी रक्षा के लिए युद्ध करते थे. उन्होंने अपने जीवन के अंतिम दस वर्ष कीरतारपुर में व्यतीत कीये. उनका जीवन अत्यन्त सादा था. उन्होंने हरराय को गद्दी दी और वे 3 मार्च, 1644 में गोलोकवासी हुए.

249

गुरु हरदास - गुरु हरगोविन्द के पाँच पुत्र थे. इनमें से तीन पुत्रों की मृत्यु उनकी जीवितावस्था में हुई. और दो पुत्र इस गद्दी के लिए अयोग्य सिद्ध हुए. तब गुरु गोविन्द के पुत्र बाबा गुरदीत्त के पुत्र हरराय को गद्दी दी गई. हरराय का जन्म 30 जनवरी 1630 को हुआ था. जब शाहजहाँ का पुत्र दिल्ली की गद्दी के लिए लड़ रहा था तब गुरु ने लश्कर को वापस लौटाने के लिए कहा. वे खून बहाना नहीं चाहते थे. दारा शिकोह सिक्ख धर्म की प्रशंसा करते थे और उनको गुरु के प्रति प्रेम था. गुरु ने दारा को दवाइयाँ से बचाया था. औरंगजेब इस बात को भूल नहीं पाया. गुरु को दरबार में बुलाया. इसका कारण यह था कि बादशाह इस बात का पता लगाना चाहता था कि सिक्ख धर्म में इस्लामधर्म के विरुद्ध कुछ लिखा गया है या नहीं. तब गुरु ने अपने पुत्र रामराय को दरबार में भेजा. बादशाह ने उससे पूछा कि मुसलमानों को क्यों इस पुस्तक में नीचा दिखाया है ' तब रामराय ने इसके प्रत्युत्तर के रुप में कहा कि वहाँ " मुसलमान " शब्द का प्रयोग गलत हुआ है. वहाँ इमाम या मूर्ख होना चाहिए. इससे ~~बादशाह~~ बादशाह को अत्यंत हर्ष हुआ और रामराय को भेंट दी. लेकिन इस बात से गुरु को दुःख हुआ क्योंकि उनके पुत्र में हिम्मत नहीं थी. उनको इस बात की भी प्रतीति हो गई कि रामराय गुरु पद के लिए योग्य व्यक्ति नहीं है. गुरु ने अपने छोटे पुत्र हरकृष्ण को गद्दी दी. इनके समय में सिक्ख-धर्म की काफी प्रगति हुई.

गुरु हरकृष्ण - गुरु हरकृष्ण पांच वर्ष की अवस्था में गद्दी पर बैठे. रामराय को भी गुरु पद की अत्यंत इच्छा थी. इसका परिणाम यह आया कि दोनों के बीच विवाद होता रहा. रामराय दरबार में गया. बादशाह ने इसका फैसला करने के लिए रामराय एवं हरकृष्ण को दरबार में बुलाया. बादशाह ने सच्चे गुरु की परीक्षा करने के लिए कई औरतों को रानी जैसे कपड़े पहनाकर बैठा दिया और कहा कि जो प्रथम दृष्टि में रानी को पहचान सके, उसीको गुरु पद दिया जायगा. हरकृष्ण ने प्रथम दृष्टि में ही महारानी को पहचान लिया. जिससे उनको गद्दी दी गई. किन्तु वे दिल्ली में ही थे

250

तभी उनकी चेचक की बीमारी से मृत्यु हुई. उन्होंने मृत्यु के पहले कहा कि उनका शिष्य बाकला गाँव में मिलेगा. तेज बहादुर इस गाँव में रहते थे.

गुरु तेजबहादुर - तेजबहादुर, गुरु हरगोविन्द के छोटे पुत्र थे. उनका जन्म सन 1621 के अप्रैल की पहली तारीख को हुआ था. धीरमल ने उनकी हत्या करने का प्रयत्न किया था लेकिन वे बच गये. जब गुरु अमृतसर में प्रार्थना के लिए गये तब दरवाजे बंद कर दिये गए. जब वे कीरतारपुर गये वहाँ भी धीरमल के लोगों ने उनका विरोध किया. तब उनको बहुत दुःख हुआ और उन्होंने कीरतारपुर से पांच मील दूर जमीन ली और वहाँ रहने लगे. इस गाँव को आनन्दपुर कहा गया. बादशाह को इस बात की प्रतीति हुई कि गुरु के कार्य मुगल जाति के लिए भय पैदा कर सकते हैं तब उनको बादशाह के के समक्ष उपस्थित किया गया. जब बादशाह को यह विश्वास हो गया कि गुरु फकीर जैसे ही है. उनके कार्य हमारे लिए भय पैदा करनेवाले नहीं है. इसके बाद गुरु आग्रा, अल्लाहाबाद, बनारस, गया, पटना आदि जगह गये. वे दो साल तक आसाम में रहे. एक दिन गोविन्ददास ने पिता को व्यथित देखकर इसका कारण पूछा. तब गुरु ने कहा कि भारत में विदेशी प्रजा का राज्य है. इसके लिए कुछ करना ही होगा. कोई ऐसे महान व्यक्ति की जरुरत है जो स्वयं बलि होने के लिए तैयार हो. लेकिन ऐसे महान व्यक्ति कहाँ होगें ' तब पुत्र ने कहा कि आपके सिवा और कौन है ' इस प्रत्युत्तर से पिता को हर्ष हुआ और उन्होंने पुत्र को इस गद्दी के लिए योग्य समझा. कई सिक्ख उनके शिष्य हुए. बादमें, गुरु को कारागार का दंड मिला. बादशाह ने गुरु को इस्लाम धर्म अपनाने के लिए कहा लेकिन गुरु ने इसका इन्कार कर दिया. तदंनतर गुरु की हत्या की गई.

गुरु गोविन्दसिंह - जब उनके पिता की मृत्यु हुई तब गोविंदसिंह नव साल के बालक थे. उन्होंने माता से गुरुमुखी, संस्कृत, पंजाबी, हिन्दी आदि का अभ्यास किया था. गुरु नानक ने जिन सिद्धान्तों की स्थापना की थी गोविन्दसिंह ने भी उन सिद्धान्तों को महत्व दिया. उन्होंने सिक्खों को पाँच वस्तुएँ

रखने के लिए कहा - कच्छा, कृपाण, कड़ा, कच, कंघा आदि.

औरंगजेब के बड़े पुत्र बहादुरशाह ने गुरु को आगरा बुलाया वहाँ उनको बहुमूल्य वस्त्र दिये गए. इस प्रकार मुगल और सिक्खों के बीच का भेदभाव मिट गया. जब गुरु दक्षिण की ओर गए तब दो पठान भी उनके साथ गये. बहादुरशाह और गुरु के संबंध से वाजीरखान व्यथित हुआ क्योंकि उसने गुरु के दो पुत्रों की हत्या की थी . इसलिए वह यह नहीं चाहता था कि वे दोनों मित्र हो. वाजीरखान ने गुरु की हत्या करने का प्रयास किया. लेकिन वे बच गये.

बन्दासिंह - गुरु गोविन्दसिंह के पश्चात बन्दासिंह सिक्खों के राजकीय गुरु हुए. उन्होंने ठास्का, शाहाबाद, मुस्तफाबाद आदि को जीत लिया. इसके बाद कपूरी, सघौरा और मुखलीस को भी जीत लिया. बन्दा ने 1710 में सरहिन्द पर विजय प्राप्त की. बादमें, उन्होंने राज्य का शासनसूत्र संभाल लिया और वे लोहगढ़ में राजा की तरह रहने लगे. उन्होंने जमींदारी प्रथा को हटा दी. सिक्खों को सहरानपुर और जलालबाद पर विजय मिली और माजहा और रीआर्की को भी जीत लिया. बादशाह को जब इसका पता चला तब उसने अपने लश्कर को भेजा. सिक्खों ने उस लश्कर के बहुत से सैनिकों को मार डाला एवं वे लोग उस किल्ले [लोहगढ़] में रहने लगे. लेकिन जब वहाँ अन्न के बिना रहना मुश्किल हो गया तब गुरु एवं अन्य सिक्ख वहाँ से निकल गये. गुरु की जगह पर गुलाबसिंह वहाँ रहा. बादमें, सिक्ख प्रजा ने एकत्रित होकर हिन्दू राजाओं से युद्ध किया. जिसके परिणाम स्वरुप उन्होंने कहलुर के राजा भीमचंद को जीत लिया. मान्डी के राजा सिद्धसेन ने बन्दा को मदद की. चंबा का राजा उदयसिंह बन्दा का मित्र बन गया और उसने अपने परिवार की एक लड़की का विवाह बन्दा से किया. बन्दा को अजयसिंह नामक एक पुत्र हुआ. समंदखान को लाहौर का गवर्नर बनाया गया. बन्दा ने 1713 में लोहगढ़ एवं सघौरा का त्याग किया. बादमें यवनों ने बंदासिंह की हत्या की.

" गुरुकुल " में गुप्तजी ने सिक्ख गुरुओं का वर्णन इस प्रकार किया है---

गुरुनानक-

नानक का जन्म विक्रमी संवत पन्द्रह सौ छब्बीस के कार्तिक मास में हुआ. वे सन्तों को दान देते थे और उनके खेत पक्षी चुनते थे. तब वे हर्षित होकर गाते थे --

" भर भर पेट चुगोरी चिड़ियो,
हरि की चिड़ियाँ,हरि के खेत । " [1]

अर्थात वे गृहस्थ होकर भी त्यागी थे. उनके दो पुत्र थे- श्रीचन्द्र एवं लक्ष्मीदास. श्रीचन्द्र त्यागी था और लक्ष्मीदास संग्रही था. श्रीचन्द्र उदासी मत के प्रवर्तक हुए. दो पुत्र होते हुए भी उन्होंने अपने शिष्य अंगद को गद्दी दी.

" कुलगत नहीं, शिष्य गुणवत हो
रक्खा गद्दी का अधिकार । " [2]

उन्होंने प्रव्रज्या धारण की. बुद्ध की तरह अटल समाधि छोड़ दी. उन्होंने वेद और वेदान्त का ज्ञान सरल भाषा में दिया. दृषद्वती तट पर ऋषियों ने जो वैदिक मंत्र गाये थे उन्हीं के भाव नानक अपनी भाषा में भरने लगे और उन्होंने निर्भय होकर साम्य धर्म का प्रचार किया. उन्होंने कहा कि सभी को शुभ कर्मों का अधिकार है. शुद्ध मन की भक्ति के बिना सारे कर्मकाण्ड निष्फल हैं. सत्कर्म के बिना विचार पवित्र नहीं बनते हैं. इसके बिना जप-माला तिलक आदि व्यर्थ है और उपवीत का बन्धन भी उलटा ही है. जब सभी परम पिता के पुत्र है तब कोई घृणा के योग्य नहीं है. सभीको भ्रातृभावपूर्वक रहना चाहिए और सौख्य-शान्ति और आरोग्य को प्राप्त करना चाहिए. उन्होंने बाबर की भेंट अस्वीकार करते हुए कहा-

" औरों की छीना झपटी पर
भरता है वह अपना पेट ? " [3]

---

1. गुरुकुल, पृ. 39
2. वही, पृ. 40
3. वही, पृ. 43

253

वे देश विदेश में घूमे और अनेक महापुरुषों से मिले वहाँ उनके उपदेश को लोगों ने शांति से सुना. उनके प्रथम अनुयायी शूद्र हुए. गुरु को भी इस बात से गौरव हुआ. वे मानते थे कि छोटी श्रेणी में ही पहले बड़ा प्रचार होता है. अतार्किक व्यक्ति ही किसी तत्व का स्वीकार कर सकते हैं. गुरु ने जो बीज बोये थे उसका ही बादमें विकास हुआ.

गुरु अंगद

गुरु नानक ने गुरु अंगद को अपना दायित्व दिया. अंगद ने लिखने पढ़ने का प्रचार किया. नानक के शील एवं शिक्षा के सार को लिपिबद्ध किया. राजा और रंक एक ही पंक्ति में बैठते थे अर्थात् उनमें ऐक्य भावना थी. जिससे एक राष्ट्र बन गया. वहाँ तन के साथ मन की भी तृप्ति होती थी. गुरु के उपदेशों से हर व्यक्ति नई उमंग पाता था. उनका जीवन शिष्यों को संघठित करने में व्यय होता था. एक व्यक्ति अनेकों का धन भोगे यह तो अन्याय ही है. सार्वजनिक हित के लिए दान करने का भाव सिक्खों में जाग उठा जिससे गुरु अंगद को अपने प्रस्ताव को सफल देखकर बड़ा आनंद हुआ. वे अपने पुत्र को भी भिक्षुक नहीं बल्कि व्यवसायी बनने के लिए कहते थे. उनको दूसरों की सहायता करने में अधिक आनंद मिलता था. हुमायूँ शेरशाह से हार कर गुरु के पास आया तब उनको ध्यान मग्न देखकर हुमायूँ ने तलवार खींच ली. उस समय गुरु के पलक खुले और उन्होंने उनको कहा -

" शेरशाह के आगे तेरी
कहाँ गई थी यह तलवार ?
रख छोड़ी थी किसी साधु पर
वन्य देखने को क्या धार ? " [1]

यह सुनकर हुमायूँ लज्जित हो गया. गुरु के मन में किसी के प्रति दुर्भाव कभी नहीं आया. न तो वे कभी कुवचन का उच्चार करते थे और न तो उनके कर्म में अनुचित वर्ताव. अंगद ने नानक से गुरु सेवा माँगी थी. नानक ने प्रभुजन सेवक को सच्चा भक्त बतलाया है .

---

1. गुरुकुल, पृ. 48

गुरु अमरदास
---------- गुरु अंगद ने आत्मज रहते हुए भी अमरदास को गुरु गद्दी दी. उदासी मत की ओर आकर्षित देखकर अमरदास ने सिक्खों को गीता का ज्ञान दिया. जिस प्रकार कृष्ण ने अर्जुन को दिया था. उन्होंने कहा कि परलोक और नरलोक की रचना करनेवाले प्रभु एक ही है . घर में रहने के बाद व्यसनों से बचे रहने में महानता है. कापुरुष ही संसार को छोड़कर भागते है. शूरवीरों को यहाँ से ही जगदाधार मिल जाता है. " शान्ति शान्ति " कहने से शान्ति मिल नहीं पाती. तन्द्रा को समाधि समझकर जो बैठ रहे हैं उनको वे कहते हैं जागो और भ्रान्ति को त्याग दो.

ऐसे शतायुगुरु को काम करते हुए देखकर बोला एक पीर-

" क्यों अब भी

आप नहीं करते आराम ? " [1]

तब गुरु ने इसका प्रत्युत्तर देने के लिए एक दृष्टांत की सहायता ली. एक आदमी धूल छाना करता था और उसमें से कोई चीज मिल जाने के बाद वह आनंदित हो जाता था. उसी व्यक्ति को एक उदार धनी ने एक हीरा धूल में डाल दिया. इस हीरे को प्राप्त करने से वह धनी हो गया फिरभी उसने धूल छानने का काम नहीं छोडा. उसको धूल में से अनमोल हीरे मिलते थे. अर्थात वह धूल छानने का कार्य छोड़ने के लिए तैयार नहीं हुआ. अकबर गुरु को बारह गाँव देना चाहते थे लेकिन गुरुने इसका इन्कार कर दिया और कहा- " हम स्वतन्त्र ही अच्छे वीर " [2] जब उनको राम ने ही जागीर दे रक्खी है तब वे ऐसी जागीर लेना नहीं चाहते थे. एकबार अकबर सेना के साथ लाहौर में रहा तब वहाँ मंहगाई फैल गई और प्रजा त्राहि त्राहि कर उठी तब गुरु ने प्रजा के कष्ट का वर्णन किया और उस वर्ष का कर क्षमा करवाया. इससे सिक्ख गुरुओं की लोकप्रियता और भी बढ़ गई. गुरुपत्नी अपनी बेटी का विवाह कहाँ हो ? इस विचार से चिन्तित रहती थी. गुरु ने पूछा कि

---

1. गुरुकुल, पृ . 50
2. वही, पृ. 52

तुम कैसे वर की इच्छा रखती हो ? तब पत्नी ने कहा कि " रामदास जैसे सुपात्र की " [1] रामदास उनका शिष्य था. जो गद्दी के लिए योग्य था. गुरु जिस चौकी पर बैठकर स्नान कर रहे थे उसका पाया टूट पड़ने का भान होने से उनकी पुत्री ने वहाँ पर हाथ रख दिया. परिणाम यह हुआ कि कील उसके हाथ में घुस जाने से रुधिर बहने लगा. जब गुरु को इस बात का पता लगा तब गुरु ने उसको कुछ माँगने के लिए कहा तब उसने माँगा कि--

" अपनी गद्दी का जो हमको
दिया आपने है अधिकार
रहे हमारे ही कुल में वह,
माँगूँ मैं क्या और उदार ? " [2]

इतना नियम अवश्य रखा गया कि ज्येष्ठ में यदि गुण न हो तो वह गुरु नहीं बन सकता.

गुरु रामदास

रामदास ने गुरु की आज्ञा से गुरुपद धारण किया था. एक धनी ने गुरु को मणिमय हार उपहार के रुप में दिया. गुरु ने उसी क्षण ही एक साधु को देते हुए कहा -

" धन्य तुम्हारी एक भेंट यह,
हम दो दो जन हुए निहाल,
भाई, इसे न भूलो- लक्ष्मी
चलती फिरती है चिरकाल । " [3]

अकबर रामदास को भूमि देना चाहता था लेकिन गुरु ने अपने आपको हरि के साथ रखा. गुरुने अपने तीन पुत्रों में से छोटे पुत्र अर्जुन को गद्दी दी.

---

1. गुरुकुल, पृ. 53
2. वही, पृ. 55
3. वही, पृ. 58

256

गुरु अर्जुन
गुरु अर्जुन ने अमृतसर को गुरु की राजधानी और सिक्खों का तीर्थ बनवाया. उन्होंने हरि मन्दिर और अपने लिए एक उटज भी बनवाया. उन्होंने गुरुवाणी का संकलन किया. यह ग्रंथ सिक्खों का आदिग्रंथ है. गुरु के बड़े भाई पृथ्वीचन्द्र ने अर्जुन के शिशु को विष देने के लिए एक पूतना को तैयार किया. लेकिन इसका भेद प्रकट हो जाने से वह शिशु बच गया. लवपुर का प्रधान चन्दूसाह अपने बेटी का विवाह गुरु के पुत्र के साथ करना चाहता था. लेकिन गुरु ने उसको घमण्डी समझा और उसके साथ विवाह नहीं किया. तब उसने गुरु के विरुद्ध जहाँगीर को समझाया.

ग्रंथ साहब में गुरु- वाणी के साथ सन्तों के गीत भी संग्रहीत थे. जब ग्रंथसाहब को इस्लामधर्म के विपरीत बतलाया गया तब गुरु ने कहा कि दोनों का पंथ एक ही है. बादशाह ने अपने हजरत का उल्लेख ग्रंथ साहब में करने के लिए कहा. तब गुरु ने कहा कि -

" लिख सकता हूँ यदि मेरा प्रभु
मुझे प्रेरणा करे पुनीत,
लिख न सकूँगा किन्तु किसी के
तोष-हेतु या भय से भीत . " [1]

तब गुरु को राजद्रोही कहा गया और उन पर दो लाख का दंड लगाया गया. चन्दूशाह अब भी वही विवाह करवाना चाहता था. अंतमें, गुरु अर्जुन की बलि से यज्ञ का आरम्भ हुआ. अब सिक्ख प्रजा के लिए युद्ध आवश्यक बन गया.

गुरु हरगोविन्द
गुरु हरगोविन्द छठे गुरु थे. गुरुओं का यवनों से जो विरोध था वह व्यक्तिगत न होकर समष्टिगत था. हरगोविन्द ने यवनों को दो लाख देने से इन्कार किया. क्योंकि इसके लिए उसके पिता की मृत्यु हुई थी. तब

1. गुरुकुल, पृ. 65

गुरु को कारावास का दण्ड दिया गया. गुरु ने अपने पिता की तरह इस दंड का स्वीकार कर लिया. तब सिक्ख प्रजा उनसे लड़ने के लिए तैयार हो गई. गुरु ने उनको शान्त किया. बादमें उन्होंने समझा कि-

" शत्रु बनाने योग्य नहीं गुरु,
वे हैं मित्र बनाने योग्य,
छोटे हों या बड़े, किन्तु हैं
मानी सदा मनाने योग्य । " [1]

अर्थात् उन्होंने गुरु को मुक्ति दे दी. लेकिन गुरुवर अन्य के बन्धन काटने के लिए बंदी होकर रहे. गुरु ने चन्दू से वैर लिया. बादशाह ने हर्षित होकर एक काजी को भेंट किया. काजी की बाला गुरु के अधीन हो गई. उसका नाम कमला रक्खा गया और इससे कमलसर बनवाया गया. इससे सिक्खों का यवनों से संघर्ष आरंभ हुआ. प्रथम परीक्षा में ही यवन-दल विकल विदीर्ण हो गया. सत्रहवीं शताब्दि में पन्द्रह वर्ष शेष थे तब तीस सौ सिक्ख सत्तर सौ यवनों पर विजयी हुए. इससे गुरु ने उनको द्वितीय युद्ध के लिए आदेश दिया. तृतीय युद्ध में नाजिम अपनी विशाल सेना के साथ मारा गया. गुरु ने विधर्मियों पर विजय प्राप्त की. जिससे उनकी लोकप्रियता और अधिक बढ़ गई. यवन पयन्दा सैनिक का सन्मान करते थे. बादमें, यवन, पयन्दा सैनिक अपने को ही सबकुछ जानकर गुरु की उपेक्षा करने लगा. तब गुरु ने कहा-

" मैं भी कुछ औषध रखता हूँ -
गुरु ने भी यों कहा सरोष । " [2]

बादमें, पृथ्वी के पुत्र, चन्दू के पुत्र और पयन्दा सैनिक की गुरु के हाथों से मृत्यु हुई.

अब सिक्ख प्रजा अपने कार्य करने में समर्थ हुई. गुरु ने उनमें जाति-धर्म गौरव को जगा दिया.

---

1. गुरुकुल, पृ. 74
2. वही, पृ. 81

गुरु हरराय

गुरु हरराय, गुरु हरगोविन्द के पौत्र थे. वे अपने कुल की गद्दी की क्षमता के योग्य थे. वे प्रभु के गुण गाते थे और हरि नाम स्मरण करते ही भाव विभोर हो जाते थे. गुरु दारा का रोग मेंटने के लिए शक्तिमान थे लेकिन औरंगजेब दारा पर गुरु का प्रेम सह नहीं सका. पिता और भाइयों से जब वह दुष्ट निश्चिन्त हुआ तब उसने मन में रुष्ट होकर गुरु को बुलाया. गुरु ने अपने प्रतिनिधि के रुप में म रामराय को भेजा. लेकिन वह दुर्बल था जैसा दिखता था वैसा नहीं था.

बादशाह निम्न श्लोक से क्रोधित हो गया-

" मुसलमान की मिटटी लेकर,
घट कुम्हार ने किये तयार,
हाहाकार पुकार उठे वे
आप अबे में पकती वार । " [1]

तब रामराय ने कहा-कि-

" बेईमान पाठ है,
" मुसलमान है लिपि का दोष । " [2]

यह सुनकर बादशाह शान्त हो गया और उसने हँस दिया.

गुरु हरिकृष्ण

गुरु हरराय ने अपने सात वर्ष से भी छोटे लड़के हरिकृष्ण को गद्दी दी. रामराय सिक्खों का सम्राट हो सकता था. लेकिन वह शाही टुकड़ों पर जीता था और श्वान की तरह दिन काट रहा था. रामराय गुरु गद्दी पाने के लिए शत्रु से मिला. उसने बादशाह को समझाया कि वह हुजूरी होने के कारण गद्दी से वञ्चित रहा है. हरिकृष्ण बालक होने से सिक्खों को रोक नहीं सकेगा. अगर सिक्ख प्रजा विद्रोही बन जायेगी तो

---

1. गुरुकुल, पृ. 87
2. वही, पृ. 87.

सारा पंजाब नष्ट हो जायेगा. ऐसा सुनकर बादशाह ने हरिकृष्ण को बुलाने के लिए आदेश दिया. जब उनको अंतःपुर में बुलाया गया तब उन्होंने आसन का इन्कार कर दिया और वे महिषी की गोद में जा बैठे. उनके इस अनुपम रुप को देखकर बादशाह भी चमत्कृत हुआ. बादशाह ने गुरु को पूछा कि अगर मैं एक थप्पड़ दूँ तो ? तब गुरु ने कहा कि तब तो मेरा हाथ जो आपने पकड़ा हुआ है वह छूट जायेगा. यह सुनकर बादशाह ने रामराय को कहा कि-

" छोटा बच्चा बड़ा गुरु है ! " [1]

गुरु तेगबहादुर

उस समय औरंगजेब का शासन था और उसने चारों ओर त्रास फैला रखा था. वह बलपूर्वक हिन्दू कुल का ह्रास कर रह था. वह बूढ़े बाप और बड़े भाई को भूल गया था. वह हिन्दुओं को सता रहा था, काव्य-संगीत का नाश हुआ था. साधुसन्तों पर हाथी फिराये जाते थे. उसने आर्यों के धर्मोत्सव को बंद कर दिया था. गुरु को इस बात का पता चला कि औरंगजेब आर्यों के धर्म और रीति-नीति को नष्ट कर रहा है. तब गुरु ने उसको एक पत्र लिखवाया. इस पत्र के प्रत्युत्तर के रुप में गुरु को दरबार में बुलाया गया. गुरु पांच शिष्यों के साथ दिल्ली जाने वाले ही थे कि एक मुसलमान ने आकर कहा कि

" आप के लिए हाल में
एक लाख का हुआ इनाम । " [2]

तब गुरु उस मुसलमान के साथ दिल्ली गये. वहाँ बादशाह ने उनको करामात दिखाने के लिए कहा. लेकिन गुरु ऐसी करामत के विरुद्ध थे. उनको जीना हो तो मुसलमान बनना आवश्यक था. लेकिन वे अपने स्थान से हटनेवाले नहीं थे. गुरु के साथ जो पांच शिष्य दिल्ली आये थे, उनके सिर काट दिये गये. गुरु उनके व्रत पर अटल रहे तब उनको बंदी बनाया गया. और उनको अनेक कष्ट दिये गये. अंतमें, जब बादशाह ने गुरु को मारने के लिए तलवार उठायीं वहाँ

1. गुरुकुल, पृ. 92
2. वही, पृ. 103

ही वे ध्यानमग्न हो गये और उन्होंने देह का त्याग कर दिया. जब यवनों ने गुरु के शव को देने का इन्कार किया तब अंत्यज कुल के पिता-पुत्र कि जो गुरु से कृतार्थ हुए थे. वे वहाँ गये और पिता ने अपना सिर काट डाला. पुत्र ने पिता को प्रणाम किया और पुत्र गुरु के शव को लेकर निकल गया.

गुरु गोविन्दसिंह - गुरु गोविंदसिंह अपने पिता के वैर का बदला यवनों से लेना चाहते थे. उसको एक बार दो कंकण भेंट में दिये गये तब उन्होंने कहा कि

" कंकण नहीं, मुझे तो कर दो,
जो वैरी को धरें समेंट । " [1]

इन दोनों कंकण को गुरु ने जल में डाल दिया. आज उनको अलंकार की नहीं बल्कि आयुध की जरुरत थी. सिक्खों ने यज्ञ किया . गुरु ने कहा कि इस अवसर पर अम्बा बलिदान माँग रही है. यह सुनकर दयाराम लाहौरी बलि होने के लिए आगे आया. इसके बाद धर्मसिंह, हिम्मत, मुहकम और " साहब " भी " सिंह " पदवी के पात्र सिद्ध हुए. पाँच सिक्खों को उन्होंने पाँच पाण्डव कहा और स्वयं गुरु गोविन्द. अर्थात , पाँच पाण्डव को कौरवों अर्थात यवनों का भय नहीं है. सिक्ख जाति ने एक होकर वीरता का व्रत लिया और आदिग्रंथ को गुरु माना गया. उन्होंने सबको कच्छ, कृपाण, कड़ा, कच, कंघा आदि सिक्ख धर्म के प्रतीक के रुप में दिया. गुरु ने यवनों के विरुद्ध रण-केतु फहराया. गोविन्दसिंह के दो बच्चों की हत्या की गई. इसका कारण यह था कि उन्होंने मुसलमान धर्म को अपनाने का और मुसलमान बनने को इन्कार किया था.

औरंगजेब ने अपने चार पुत्रों में से बड़े पुत्र आजमशाह को गद्दी दी. तब उसके दूसरे लड़के बहादुरशाह ने गुरु की मदद से आजमशाह से युद्ध किया. जिसमें गुरु ने आजमशाह को मार डाला. इसके बाद गुरु दक्षिण में गये जो हीरों वीरों का प्रान्त हैं. वहाँ बंदा वैरागी संसार को छोड़कर लोकोत्तर

---

1. गुरुकुल, पृ. 125

काम करते रहते थे. गुरु ने दो पठान बालकों को अपने साथ रखा था. गुरु उनको पुत्रवत प्यार करते थे किंतु अपने पिता के वैर का प्रतिशोध लेने के लिए उन्होंने रात को गुरु को मार डाला.

बन्दा वैरागी - सिक्ख प्रजा बन्दा वैरागी को ग्यारहवाँ गुरु मानकर उनको आदर देती है. उन्होंने यवनों का तेज हर लिया. जो कार्य गुरु गोविन्दसिंह नहीं कर पाये वही कार्य बन्दा वैरागी ने किया. उनकी विजय पताका लाहौर से पानीपत तक फैल गई. यवनों ने बन्दा की आकृति के उनके एक भक्त गुलाब को कैद किया था .. वे उन्हें ही बंदा वैरागी मानते थे. कितने ही सिक्ख मारे गये लेकिन कोई भी मुसलमान बनना नहीं चाहते थे. अंतमें, बादशाह ने बंदा को पूछा कि तुम्हें कैसी मौत चाहिए तब उसने कहा कि-

" जीवन जिसकी इच्छा पर है,
उसकी ही इच्छा पर मृत्यु . " [1]

बन्दा ने कहा कि आत्मा का अंत नहीं होता है सिर्फ शरीर की ही मृत्यु होती है. यह सुनकर बादशाह को विस्मय हुआ.

तुलना

वैसे " गुरुकुल " के गुरुओं का जीवन वृत्तांत-इतिहास के आधार पर ही लिखा गया है. किंतु कवि कल्पना की मौलिकता के कारण कहीं-2 अन्तर भी दिखाई पड़ता है. अतः हम दोनों की तुलना प्रस्तुत कर रहे हैं.

गुरु नानक -

" गुरुकुल " और इतिहास दोनों में लिखा गया है कि उनका जन्म 1526 में हुआ था. लेकिन इतिहास में वैशाख की तीज को और गुरुकुल के कवि ने लिखा है कि कार्तिक मास में हुआ था. दोनों में इस बात का उल्लेख हुआ है कि वे दान करते थे, उनके खेत चरे जाते थे. वे संतों को खिलाते थे और प्रभु के गीत गाते थे. गुप्तजी के काव्य में और इतिहास में उनके दो पुत्रों श्रीचन्द और लक्ष्मीदास का उल्लेख हुआ है. इतिहास में उनकी यात्रा

1. गुरुकुल, पृ. 25।

262

का विस्तृत वर्णन हुआ है. गुप्तजी ने सिर्फ इतना ही लिखा है कि वे देश विदेश में घूमे और वहाँ जाकर उन्होंने उपदेश दिया. वे मानते थे कि निम्न जाति में ही धर्म का प्रचार हो सकता है. गुरु नानक ने अपने शिष्य अंगद को गुरु गद्दी दी. इस बात का उल्लेख दोनों में हुआ है.

गुरु अंगद
------ कवि ने अपने काव्य में जीवन परिचय को स्थान नहीं दिया है. दोनों में इस बात का उल्लेख हुआ है कि उन्होंने गुरु नानक के उपदेश को अपनाया था और उसको लिपिबद्ध किया था. हुमायूँ और अंगद के बीच जो घटना घटित हुई इसका उल्लेख मात्र गुप्तजी के काव्य में ही मिलता है इतिहास में नहीं.

गुरु अमरदास
------- गुरु अंगद ने गुरुनानक की तरह अपने शिष्य अमरदास को गद्दी दी. " गुरुकुल " के कवि लिखते हैं कि अकबर गुरु को बारह गाँव देना चाहते थे, लेकिन गुरु ने इसका इन्कार कर दिया था जबकि इतिहास में इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता है. दोनों में इस बात का उल्लेख हुआ है कि उनकी पुत्री का विवाह रामदास से हुआ जो उनका शिष्य था और उसको ही गद्दी मिलनेवाली थी. अमरदास की पुत्री ने अपने पिता से यह माँग किया कि गद्दी उसके वंश में ही रहे. इस घटना का उल्लेख इतिहास तथा " गुरुकुल " दोनों में मिलता है.

गुरु रामदास
--------- गुप्तजी लिखते हैं कि अकबर रामदास को भूमि देना चाहता था लेकिन गुरु ने इसका इन्कार कर दिया जबकि इतिहास में मिलता है कि अकबर रामदास का सम्मान करता था. उसने अपने छोटे पुत्र अर्जुन को गुरु गद्दी दी. इस बात का उल्लेख गुप्तजी ने किया है. 500 बीघा जमीन भेंट के रूप में दी थी. वहाँ उन्होंने एक तालाब खुदवाया और अमृतसर नामक एक शहर भी बसाया.

263

गुरु अर्जुन

गुरु अर्जुन तीन भाइयों में सबसे छोटे थे. इतिहास में मिलता है कि अर्जुन ने सामाजिक सुधार की दृष्टि से हेमा चौधरी से विवाह किया था. इसका उल्लेख " गुरुकुल " में नहीं है. इतिहास और " गुरुकुल " के लेखक के मतानुसार गुरु अर्जुन ने " ग्रन्थ साहब " में गुरु और संतों के उपदेश संकलित किये. यह " ग्रन्थ साहब " सिक्खों का आदिग्रंथ है. " गुरुकुल " के कवि ने लिखा है कि गुरु अर्जुन के भाई पृथ्वीचन्द ने गुरु को भी विष देने का प्रयत्न किया था, किन्तु यह भेद बादमें प्रकट हो गया. इसका उल्लेख इतिहास में नहीं मिलता है.

गुप्तजी ने लिखा है कि चन्दूशाह ने गुरु के विरुद्ध जहाँगीर को कहा कि " ग्रन्थ साहब " में इस्लामी मत के विपरीत बातें लिखी गई हैं. इतिहास में मिलता है कि गुरु के विरोधियों ने ये बातें जहाँगीर से कही. गुप्तजी के मतानुसार जब गुरु के विरुद्ध जहाँगीर के कान भर दिये गये तब बादशाह ने गुरु को कहा कि उनके हजरत का उल्लेख " ग्रंथ साहब " में करना चाहिए, गुरु ने इसका इन्कार कर दिया, तब उनको राजद्रोही कहा गया और उनपर दो लाख रुपये का दंड हुआ. बादमें एक अपूर्व यज्ञ का आरंभ हुआ . इस घटना का उल्लेख इतिहास में अलग ढंग से मिलता है. इतिहास में उल्लेख है कि अकबर को इस पुस्तक में कोई विरोधी बात नहीं मिली थी. लेकिन अकबर की मृत्यु के बाद जहाँगीर के समय में उसके पुत्र खुसरु ने अपने पिता के विरुद्ध आवाज़ उठाई. जब इसका कारण पूछा गया तब गुरु के विरोधियों ने कहा कि यह कार्य गुरु ने किया है. इसका परिणाम यह आया कि गुरु को अनेक कष्ट दिये गये और बादमें उनकी हत्या की गई.

गुरु हरगोविन्द

दोनों के मतानुसार गुरु ने अपने पिता का दंड कर दो लाख भरने का इन्कार कर दिया तब उनको कारागार का दण्ड मिला. उनको ग्वालियर के किले में बंदी बनाया गया तब सिक्ख वहाँ जाते थे और किल्ले को प्रणाम करते थे. गुप्तजी के मतानुसार मियाँ मीर एक पीर था,

उसने जहाँगीर को कहा कि गुरु को मित्र बनाना चाहिए, शत्रु नहीं. तब उनको मुक्ति दी गई. लेकिन गुरु अकेले मुक्त होना नहीं चाहते थे. जबतक शिष्यों को मुक्ति नहीं मिली तबतक वे स्वयं भी बंदी बने रहे. बादमें, गुरु ने चन्दू की हत्या की. इतिहास में भी इस घटना का उल्लेख हुआ है. इस घटना के बाद जहाँगीर ने गुरु को मित्र बना लिया, लेकिन जब जहाँगीर को पता चला कि गुरु अर्जुन की हत्या और हरगोविन्द को जो कारागार का दण्ड मिला है, इसका कारण चन्दूशाह है. तब बादशाह ने चन्दू की हत्या की. जबकि गुप्तजी के अनुसार स्वयं गुरु ने चन्दू की हत्या की.

युद्धों में, गुरु को विजय मिलती थीं, लेकिन गुरु का लक्ष्य राज्य नहीं था. उन्होंने तो सिर्फ सिक्ख प्रजा में जाति और धर्म के गौरव को जगाने का काम किया. इस बात का उल्लेख " गुरुकुल " और इतिहास दोनों में हुआ है.

गुरु हरराय -

गुरु औरंगजेब के बड़े पुत्र दारा को प्रेम करते थे. और गुरु ने बीमारी में उसको दवाईयाँ भी दी थीं. जब औरंगजेब को इसका पता चला तब उसने गुरु को बुलाया. गुरु ने हरराय को भेजा, तब उसने कहा कि " मुसलमान " के स्थान पर " बेईमान " होना चाहिए, मुसलमान लिपि का दोष है. अर्थात्, दोनों में इस घटना का उल्लेख है.

गुरु हरिकृष्ण -

गुप्तजी ने लिखा है कि हरराय ने बादशाह को गुरु के विरुद्ध में कहा. जिससे गुरु को दरबार में बुलाया गया. इतिहास में मिलता है कि रामराय ने हरिकृष्ण के विरुद्ध में बादशाह के कान भरे. जिससे बादशाह ने उनको बुलाया लेकिन परीक्षा में गुरु हरिकृष्ण उत्तीर्ण हुए और बादशाह ने भी कहा कि गुरु हरिकृष्ण ही सच्चे गुरु हैं.

गुरु तेगबहादुर

" इतिहास " और " गुरुकुल " में इस बात का उल्लेख हुआ है कि गुरु तेगबहादुर की मृत्यु बादशाह से हुई. लेकिन इस घटना का वर्णन दोनों

में अलग-2 ढंग से हुआ है. इतिहास में इस प्रसंग का उल्लेख इस प्रकार हुआ है- राज्यकर्ताओं को इस बात की प्रतीति हुई कि गुरु का कार्य मुगलों के विरुद्ध है. तब गुरु को दरबार में बुलाया गया . लेकिन बादशाह ने कहा कि गुरु का कार्य भय पैदा करनेवाला नहीं है. बादमें, गुरु ने यात्रा की. यात्रा के बाद उन्होंने अपने पुत्र से कहा कि आज ऐसे व्यक्ति की जरुरत है कि जो बलि दे सकें. तब पुत्र ने कहा कि आपके अलावा और कौन है ? इस प्रत्युत्तर से गुरु को हर्ष हुआ. वे अपने शिष्यों के साथ घूमने लगे. अंतमें, गुरु को बंदी बनाकर हत्या की गई.

जबकि गुप्तजी ने " गुरुकुल " में उक्त प्रसंग का वर्णन इस प्रकार किया है. औरंगजेब के शासनकाल में आर्यों के धर्म और रीतिनीति का नाश किया जाता था. तब गुरु ने एक पत्र लिखवाया. जिसका परिणाम यह आया कि उनको दरबार में जाना पड़ा, वे जानेवाले थे कि एक मुसलमान ने कहा कि आप के लिए तो बादशाह ने एक लाख रुपये के इनाम की घोषणा की है. तब गुरु और उनके शिष्य मुसलमान के साथ गये. वहाँ गुरु ने करामत दिखलाने से इन्कार कर दिया. तब उनको कारागार का दण्ड मिला और बादशाह ने उनकी हत्या के लिए तलवार उठायी, वही वे ध्यानमग्न हो गये और बादमें उन्होंने देह त्याग किया. इसका उल्लेख इतिहास में नहीं हुआ है. बादशाह ने एक लाख के इनाम की घोषणा की थी इसका कोई उल्लेख इतिहास में नहीं मिलता है.

गुरु गोविन्दसिंह - गुरु गोविन्दसिंह ने एक यज्ञ किया और कहा कि माँ बलि माँग रही हैं तब पाँच सिक्ख - दयाराम, धर्मसिंह, हिम्मत, मुकदम और साहब आगे आये. गुरु ने उनकी हत्या नहीं की बल्कि उनको धर्म और एकता का उपदेश दिया. ये पाँच सिक्ख पांच पाण्डव और गुरु गोविन्द. इस प्रकार गुरु ने पाँच सिक्खों को उपदेश दिया जैसे कृष्ण ने पांच पांडवों को दिया था. उन्होंने एकता का व्रत लिया और " आदिग्रंथ " को गुरु माना. इसके अलावा कच्छ,कृपाण, कड़ा, कच, कंघा आदि को भी सिक्ख धर्म के प्रतीक

266

के रुप में ग्रहण किया. गोविन्दसिंह के दो पुत्रों की हत्या का उल्लेख भी इतिहास और गुरुकुल दोनों में हुआ है. औरंगजेब ने आजम को गद्दी दी. इसके बाद, बहादुरशाह ने गुरु को आग्रा में आने का निमंत्रण दिया. यह प्रान्त हीरों-वीरों का है. इन सारी घटनाओं का उल्लेख इतिहास और गुरुकुल में दोनों में मिलता है. जब गुरु निद्रा में थे तब एक पठान ने गुरु को मार डाला. इस घटना का उल्लेख भी दोनों ने किया है.

बन्दासिंह - दोनों में इस बात का उल्लेख मिलता है कि सिक्ख प्रजा बन्दा का आदर करती थी. गुप्तजी के मतानुसार यवन मानते थे कि उन्होंने गुरु को कैद किया है. लेकिन वस्तुतः उनकी आकृति का गुलाबसिंह था. इतिहास के अनुसार जब सिक्ख लोहगढ़ में थे और वहाँ से गुरु और शिष्य चले गये तब गुलाबसिंह गुरु की जगह पर रहा. अर्थात्, दोनों में इस दृष्टि से अंतर है. गुप्तजी के मतानुसार बादशाह ने जब गुरु को मारने के लिए तलवार उठायी तब वे ध्यानमग्न हो गये और उन्होंने देह त्याग कर दिया. जबकि इतिहास में मिलता है कि यवनों ने उनकी हत्या की.

सिद्धराज

मैथिलीशरण गुप्त ने स्वयं पुस्तक के निवेदन में लिखा है -

" पुस्तक की सामग्री के लिए लेखक मान्यवर महामहोपाध्याय श्री गौरीशंकर हीराचन्दजी ओझा के निकट विशेष रुप से ऋणी है. श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी ने सिद्धराज संबंधी अपने तीन उपन्यास भेजकर लेखक को सहायता दी है. गुजराती न जानते हुए भी, उन्हें पढ़कर लेखक ने जो आह्लाद पाया है, उसीको वह अपने इस काम में लगने का बड़ा लाभ मानता है. सचमुच श्लाघनीय हैं वे रोमांस. लेखक तो " रोमांस " न कहकर " रोमांच " कहेगा । " [1]

---

1. सिद्धराज- निवेदन, पृ. 3-4

रानकदे के सम्बन्ध की विशेष जानकारी लेखक को अपने दूसरे गुजराती बन्धु श्री एस० पी० शाह, आई. सी. एस. के अनुज श्री एच० पी० शाह एडवोकेट से प्राप्त हुई है. " [1]

श्री चिन्तामणि विनायक वैध के अंग्रेजी ग्रंथ " मध्ययुगीन भारत " के हिन्दी अनुवाद से भी लेखक ने लाभ उठाया है . " [2]

गुजरात के इतिहास में " सिद्धराज " संबंधी अनेक घटनाओं का उल्लेख मिलता है.

सिद्धराज जयसिंह का जन्म पालनपुर में हुआ था. छोटी आयु में ही उनके पिता कर्णदेव की मृत्यु हो गई थी. जबतक सिद्धराज छोटा था तबतक उसकी माता मीनलदेवी ने तीन प्रधानों की सहायता से पाटन पर राज्य किया. जब सिद्धराज की माता सोमनाथ की यात्रा के लिए जा रही थी तब उसे ऐसे लोग मिलें कि जो बिना दर्शन के वापस लौट रहे थे. इसका कारण यह था कि वे लोग तीर्थ- कर देने में असमर्थ थे. ऐसी स्थिति में राजमाता भी बिना दर्शन के बाहुलोड़ से वापस आई. माता को वापस आई देखकर सिद्धराज ने इसका कारण पूछा. माता की आज्ञा से सिद्धराज ने तीर्थ- कर रद्द किया. इसके बाद माता ने सोमनाथ की यात्रा पूर्ण की. इस कर को रद्द करने से एक लाख से अधिक रुपये की आवक बंद हो गई.

सिद्धराज ने मालवा पर चढ़ाई की. यह युद्ध बारह साल तक चला. इस युद्ध का आरंभ नरवर्मा से हुआ था और अंत यशोवर्मा से. इस युद्ध का अंत सिद्धराज की वृद्धावस्था में हुआ. यशोवर्मा पराजित हुआ और उसको बंदी बनाया गया. सिद्धराज ने अनेक वर्षों तक गुजरात पर राज्य किया. सिद्धराज की इस जीत के बाद उसे " अवन्तीनाथ " कहा गया.

---

1. सिद्धराज- निवेदन, पृ. 3-4
2. वही, पृ. 3-4

268

जयसिंह एवं खंगार के युद्ध का वर्णन भी इतिहास में मिलता है. इस युद्ध का कारण राणकदेवी थी. सिद्धराज, राणकदेवी से विवाह करना चाहता था. लेकिन उसने तत्कालीन सोरठ- नरेश खंगार के साथ विधिवत विवाह कर लिया था. परिणाम स्वरुप दोनों के बीच वर्षों तक युद्ध होता रहा. खंगार को बंदी बनाया गया. उसने सौराष्ट्र को गुजरात में जोड़ लिया और वहाँ एक व्यक्ति को रखा. जिस साल सिद्धराज ने खंगार पर विजय प्राप्त की उसी साल (1113-14) से गुजरात में " सींम्ह संवत " शुरु हुआ. इस संवत का प्रयोग सौराष्ट्र एवं गुजरात में एक शदी तक, जबतक अनहीलपाड़ राजधानी रहा तबतक होता रहा.

इतिहास में सिद्धराज और शाकम्भरी के राजा अर्णोराज के युद्ध का वर्णन भी मिलता है. अर्णोराज के साथ सिद्धराज ने अपनी बहन का विवाह किया. कालान्जार के ताम्रपत्र पर इस प्रकार लिखा गया है कि मदनवर्मा ने गुजरात के राजा को हराया एवं मालवा और चेंडी के राजा को भी हराया था. बनारस एवं गढ़वाल के राजा का वह मित्र था.

गुप्तजी लिखित " सिद्धराज "

गुप्तजी कृत " सिद्धराज " का आरम्भ राजमाता मीनलदेवी की सोमनाथ यात्रा से हुआ है। जब सिद्धराज तीन साल का था तब उसके पिता कर्णदेव की मृत्यु हुई थी. जब वह युवक हो गया, तब माता पुत्र के कल्याण के लिए सोमनाथ की यात्रा के लिए जाती है. वहाँ मार्ग में उसे एक माता और पुत्र मिले. वे बिना दर्शन किये वापस आ रहे थे. राज्य कर देने में असमर्थ होने के कारण वे दर्शन नहीं कर पाये. अंतमें, राजमाता की आज्ञा से सिद्धराज ने तीर्थकर को समाप्त किया.

" राजकोष रिक्त हो, तो चिन्ता नहीं मुझको,
राज्य में प्रजा की सुख- सिद्धि, निधि-वृद्धि हो,

269

पुष्ट प्रजा- जन ही हैं सच्चे धन राजा के । " [1]

द्वितीय सर्ग में कवि ने सिद्धराज जयसिंह और मालव नरेश नरवर्मा के युद्ध का वर्णन किया है. सिद्धराज की अनुपस्थिति में नरवर्मा पाटन आता है. बादमें, सिद्धराज मालवा गया और वहाँ दोनों के बीच लड़ाई हुई. इसयुद्ध में नरवर्मा की मृत्यु हुई. उसकी मृत्यु के पश्चात यशोवर्मा लड़ा और अंत में उसको बंदी बनाया गया.

कवि ने तृतीय सर्ग का आरम्भ सोरठ- नरेश नवघन की ग्लानि से किया है. सिद्धराज सिन्धुराज की पुत्री रानकदे से विवाह करना चाहता था. लेकिन उसके पहले खंगार ने उससे विवाह कर लिया. परिणामस्वरूप सिद्धराज ने खंगार के प्रदेश पर चढ़ाई की. यह लड़ाई पन्द्रह साल तक चलती रही. अंतमें, खंगार की मृत्यु हुई और सिद्धराज की जीत हुई. सोरठ- नरेश की मृत्यु के बाद सिद्धराज ने उसके दोनो शिशुओं की हत्या कर दी. इस घटना का वर्णन भी " गुजरात के इतिहास " में मिलता है.

चतुर्थ सर्ग में सिद्धराज और अर्णोराज के युद्ध का वर्णन है. सिद्धराज ने पिता के प्रतिशोध का बदला लेने के लिए सपादलक्ष पर चढ़ाई की और वहाँ के राजा अर्णोराज को बंदी बनाया. सिद्धराज की पुत्री कांचनदे उस राजा को देखकर आसक्त हो गई और दोनों का विवाह किया गया.

महोबा की कीर्ति सुनकर सिद्धराज को महोबा जीतने की इच्छा हुई. लेकिन उसके वहाँ जाने के बाद महोबा के मंत्री श्रेत्रवर्मा की बुद्धिमत्ता से वे दोनों- शत्रु मित्र बन गये. इस घटना का वर्णन कवि ने पंचम सर्ग में किया है.

तुलना
---- इतिहास और " सिद्धराज " के कवि दोनों ने इस बात का उल्लेख किया है कि जब सिद्धराज के पिता कर्णदेव की मृत्यु हुई तब वह बहुत छोटा था. इतिहास के मतानुसार वह तीन साल का था और गुप्तजी के मतानुसार

---

1. सिद्धराज, पृ. 27

270

वह बहुत छोटा था. उसकी माता मीनलदेवी अपने पुत्र की शुभकामना के लिए सोमनाथ जाती हैं. दोनों में इस घटना का उल्लेख मिलता है. लेकिन जब उसको पता चला कि सोमनाथ के यात्रियों पर तीर्थ कर लगता है तब उसको बहुत आघात पहुँचा. बादमें, सिद्धराज ने माता की आज्ञा से तीर्थ कर ~~रद्द~~ रद्द कर दिया. इतिहास में उल्लेख मिलता है कि सिद्धराज ने मालवा के राजा के साथ बारह साल तक युद्ध किया. जबकि गुप्तजी ने " सिद्धराज " में लिखा है कि उन दोनों के बीच कई साल तक युद्ध होता रहा. गुप्तजी ने बारह साल का उल्लेख नहीं किया है.

राजा खंगार की वीरता और गौरव का पता उसके और सिद्धराज के बीच के युद्ध से लगता है. दोनों में इस युद्ध का कारण सिंधुराज की पुत्री रानकदेवी थीं. इतिहास के अनुसार सिद्धराज ने विजय प्राप्त की और उसने खंगार को बंदी बनाया. " सिद्धराज " काव्य के अनुसार उसकी मृत्यु होती है. उसको बंदी नहीं बनाया जाता. खंगार की मृत्यु के बाद सिद्धराज ने उसके दो शिशुओं की हत्या कीं. उनकी मृत्यु के बाद वह स्वयं सती हो जाती है.

सिद्धराज ने अपने पिता के अपमान का बदला लेने के लिए शाकम्भरी के राजा अर्णोराज से युद्ध किया. जिसमें सिद्धराज की जीत हुई और अर्णोराज को बंदी बनाया गया. इस बात का उल्लेख दोनों में अलग-2 मिलता है. गुप्तजी के " सिद्धराज " में अर्णोराज की ओर सिद्धराज की पुत्री कांचनदे आसक्त होती है और उसका विवाह अर्णोराज से होता है. इतिहास के मतानुसार सिद्धराज की पुत्री कों नहीं लेकिन उसकी बहन का विवाह अर्णोराज से किया जाता है .

अर्जन और विसर्जन

मुहम्मद साहब अपने जीवनकाल में राजा, धर्म गुरु, न्यायाधीश, सेनापति- सभी कुछ थे. उनकी मृत्यु के पश्चात ऐसा कोई व्यक्ति नहीं था जो

उनके कार्यों को संभाल सके. उन्होंने अपनी जीवितावस्था में यह तय भी नहीं किया था कि उनकी मृत्यु के बाद किसे राजा बनाया जाय ? दूसरी बात यह थी कि उनको पुत्र नहीं था. अगर होता तो भी जो पुत्र प्रजा के प्रश्नों को हल न कर पाये उसको किसी भी स्थिति में राजा नहीं बनाया जाता. राजा के लिए तो ऐसा व्यक्ति चाहिए जो सारे प्रश्नों को हल कर सके. मुहम्मद साहब की मृत्यु के बाद दूसरी एक टोली आई. एक बाहर से आनेवाले थे और दूसरे आरब थे. बाहर से आने वाले अरबों ने कहा कि पहले उन्होंने इस्लाम धर्म को अपनाया है. इस पर दोनों के बीच संघर्ष हुआ. इसके बाद अली जो मुहम्मद की पुत्री फातिमा का पति था और मुहम्मद के पितराई थे. उसको राज्य दिया गया. अर्थात उसको राजा बनाया गया. अली को राजा बनाया गया इसका विरोध अबु सुफयान ने वहाँ तक किया जहाँ तक मक्का गिरा नहीं. अली के हाथ में ही राज्य का सारा दौर नहीं था. अबु बकर, उमर और उथमान भी अली के सहायक थे. अबु बकर उनमें मुख्य थे. अबु, उमर और उथमान मदीना में रहते थे और अली अल-इराक के अल-कुफान में रहते थे.

अबुबकर का समय (632-34) दो साल का ही था. यह समय युद्ध में बीता. मुहम्मद के समय में इस्लामधर्म का प्रचार अधिक हुआ नहीं था. उसके जीवनकाल और शासनकाल में तीन में से एक भाग की प्रजा ने ही इस्लाम धर्म को अपनाया था. अल- हीजाझ इस्लाम में मानता था. सारे अरब इस धर्म का स्वीकार नहीं किया था. इतना ही नहीं, मुहम्मद की मृत्यु के बाद अल-यमान, अल- यमामाह और उमान ने कर भरने का इन्कार कर दिया. मुहम्मद के समय में जहाँ की प्रजा इस्लाम में विश्वास रखती थी, उन्होंने ही उनकी मृत्यु के बाद इस्लामधर्म का अस्वीकार किया. अबुबकर ने कहा कि वे लोग उसके नेतृत्व का स्वीकार कर ले या अंत तक युद्ध के लिए तैयार हो जाय. वे लोग युद्ध के लिए तैयार हो गये. खालीद-इबन-अल-वालीद ने इस युद्ध का नेतृत्व किया. उन्होंने इस युद्ध में महत्वपूर्ण काम किया. अल-यमान,

272

अल-यमामाह, उमान और अबुबकर की प्रजा के बीच युद्ध हुआ जिसमें खालीद जो अबुबकर की ओर से लड़ रहा था, उसको विजय मिली. उसने मध्य अरब को जीत लिया. इस युद्ध में उसके ऐसे व्यक्तियों की मृत्यु हुई कि जिनको कुरान कंठस्थ था. जिससे पवित्र कुरान के अनेक श्लोक नष्ट हुए क्योंकि उस समय कुरान लिखा नहीं गया था.

अबुबकर के शासनकाल में दो प्रधान घटनायें घटित हुई. टयुटोनिक प्रजा एक जगह से दूसरी जगह घूमती रही. जिससे रोमन साम्राज्य में कलह पैदा हुआ. और अरबों ने अपनी जीत के द्वारा परशियन साम्राज्य को नष्ट कर दिया. अगर इस बात की घोषणा किसी ने तीसरी या चौथी शताब्दी में की होती तो वह घोषणा करनेवाला मूर्ख ही ठहरता. मुहम्मद के समय तक अरब प्रजा अशक्त थी. वे अच्छे योद्धा भी नहीं थे उनमें लड़ने की कोई सामर्थ्य ही नहीं थी. लेकिन मुहम्मद की मृत्यु के बाद अरब अच्छे योद्धा बन गए और उन्होंने परशिया को जीत लिया. उस समय बायझान्टाइन शक्ति परशियन साम्राज्य में औरससानीद रोमन साम्राज्य में था. खालीद इबन अल वालीद और अमर इबन अल ने नेपोलियन, हनीबाल और एलेक्झांडर की सी वीरता से अल-इराक, परशिया, सीरिया और इजिप्त में युद्ध किया. अर्थात् वे लोग नेपोलियन आदि जैसी वीरता से लड़े.

बायझान्टाइन और ससानीद के बीच अनेक वर्षों और पीढ़ियों से युद्ध होता था. वे लोग सीरिया को भी बड़ी आसानी से जीत सके. इसका कारण यह था कि सीरिया में ज्यादा कर था. वहाँ की प्रजा को राजा पर विश्वास न था और न तो राजा को प्रजा पर. अरब प्रजा पहले भी सीरिया की सीमा पर रह चुकी थी, जिससे सीरिया की प्रजा अरब को अच्छी तरह जानती थी. परिणामस्वरुप उन्होंने अरबों से संघर्ष नहीं किया बल्कि उनका स्वागत किया. इसका परिणाम यह आया कि अरबों ने अपने प्रदेश को पुनः जीत लिया.

अरब प्रजा धार्मिक दृष्टि से काफी उदार थी. वे ज्यादा कर भी नहीं लेते थे. इन सब कारणों से अरब प्रजा ने छः महिने में ही सीरिया की राजधानी दमिश्क को 635 में जीत लिया. उस प्रदेश को जीत लेने के बाद वे अत्यंत आनंदित हुए. उस समय के राजा खालिद इबन अल वालीद ने दमिश्क की प्रजा के साथ अच्छा व्यवहार किया. खालिद इबन ने दमिश्क की प्रजा को वचन दिया कि वे लोग उनके जीवन के मिल्कत और धर्म के संबंध में उदार रहेंगे. वह प्रजा जिस धर्म को अपनाना चाहे अपना सकती है थी. सीरिया की ~~इच्छा~~ प्रजा अपनी इच्छानुसार रह सकती थीं. अरबों ने 732 ई. पू. तक तो अटलान्टिक समुद्र से भारत और चीन तक राज्य जमा लिया.

ओमायाद का समय अरबों के लिए सुवर्णयुग था. उस समय राजा की सत्ता महत्वपूर्ण थी. दमिश्क के राजा ने आठवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में स्पेन एवं आफ्रीका पर भी राज्य जमा लिया था.

प्रेरणा
---- गुप्तजी कृत " अर्जन " में सीरिया की राजधानी दमिश्क पर अरबों के आक्रमण का वर्णन है. इसयुद्ध में दमिश्क का रक्षण संभव नहीं था क्योंकि अरब प्रजा उसे जीत लेना चाहती थी. गुप्तजी ने इस ऐतिहासिक कथा के साथ एक प्रेम कहानी का वर्णन किया है. जिसकी कथा और पात्र इतिहास की कथा और पात्र से काफी भिन्न है. कहा जा सकता है कि यह कवि की अपनी मौलिकता है।

" रंग में भंग " में राजपूतों की आन तथा मर्यादा का उल्लेख किया गया है. स्वदेश प्रेम और मानापमान की भावना से गुप्तजी को प्रेरणा मिली है.

कवि ने राजपूतों की वीरता और स्वाभिमान से " विकट भट " के लिए प्रेरणा ली है.

कवि ने " गुरुकुल " का प्रणयन एक सिक्ख सज्जन के अनुरोध से किया है. वे लेखक से कहते हैं - क्या आप सिक्ख गुरुओं पर भी कुछ लिखने की कृपा करेंगे ? हिन्दी के कवियों ने, कहना चाहिए कि अब तक उन पर कुछ नहीं

लिखा. क्या गुरुओं के बलिदान इस योग्य नहीं कि मैं आपसे यह प्रार्थना न कर सकूँ ' "[1]

इसके बाद लेखक ऐसा काव्य लिखने की अयोग्यता बता नहीं पाये तब उन्होंने कहा कि - " जब तक कोई काव्य रचना न हो तब तक यह पद्य-रचना ही सही. लेखक का अपने गुरुजनों के प्रति श्रद्धाञ्जलि देने का अधिकार तो सर्वथा अक्षुण्ण है. "[2] इससे स्पष्ट होता है कि कवि ने " गुरुकुल " की रचना एक सिक्ख के आग्रह से की है.

राखंगार अपने दादा की अंतिम इच्छा पूर्ण करने के लिए जयसिंह से बदला लेने के लिए अवसर ढूँढ़ने लगा. अन्ततः वह अवसर भी भाग्य या अभाग्य से आ ही गया. दूसरों का हित करना तो कठिन है किन्तु मानव दूसरे का अहित करने में शीघ्र ही कटिबद्ध हो जाता है.

" आ गया प्रसंग वह भाग्य या अभाग्य से । ।[3]

जैसी पंक्तियाँ लिखकर कवि आरंभ में ही आगे का आभास दे देते हैं. अर्थात कवि ऐतिहासिक खण्डकाव्य लिखने के लिए ऐसे ही प्रसंग ढूँढ़ते थे और वे मिल जाते हैं . कवि सिद्धराज के माध्यम से मध्यकालीन वीरगाथा लिखना चाहता था.

मौलिकता एवं आधुनिकता

इतिहास पर आधारित होने के बाद भी सभी रचनाओं में कवि कल्पना की मौलिकता और आधुनिकता दृष्टिगत होती है.

द्विवेदीयुग की मूल भावना देशभक्ति थी. कवियों ने अतीत की गौरव पूर्ण घटनाओं द्वारा वर्तमान में प्रजा को प्रेरणा दी है. अतीत के गौरवमय

---

1. गुरुकुल, पृ. 8
2. गुरुकुल, पृ. 8
3. सिद्धराज - निवेदन, पृ. 3

पृष्ठ से पतित जाति को उसके भीतर की हीनता की भावना को दूर करने की प्रेरणा मिलती है. द्विवेदीयुग में ऐसी कोई उज्ज्वल भावना नहीं थी. इसीलिए द्विवेदीकाल के कवियों ने अतीत का सहारा लेकर पतित जाति के उद्धार का प्रयत्न किया. अतीत के गौरव को पढ़कर वर्तमान की प्रजा को भी प्रेरणा मिले. कवियों का उद्देश्य हिन्दुओं में सोई हुई राष्ट्रीय भावना को जगाना था. बलिदान की भावना मातृभूमि के प्रति कर्तव्य- भावना का एक अंग है. वीरगाथा काल के राजपूत राजा अपने व्यक्तित्व एवं उससे संबंद्ध हितों की संरक्षा के लिए लड़ते थे. वर्तमानकाल की कविताओं में प्राचीन कविता की वीर भावना से अंतर आया. वर्तमानयुग में आक्रमण की भावना न होकर बलिदान की भावना है. मैथिलीशरण गुप्त ने देश भक्ति के प्रसंग में प्राणदान को महत्व दिया है. इसका कारण यह भी है कि गांधीजी ने अहिंसा को महत्व दिया था. गांधीजी की विचारधारा से कई कवि प्रभावित हुए हैं. दूसरा कारण यह भी हैं कि उस समय की राजनैतिक परिस्थितियाँ भी शीशदान को महत्व देती थी. भारत की प्रजा ने आत्मिक बल को महत्व दिया. भारत की प्रजा मार कर नहीं मर कर विजय प्राप्त करने के लिए उत्साहित थी. इस प्रकार गुप्तजी की देशभक्ति की कविता में क्रोध नहीं है, बल्कि आक्रोश की भावना है. खोये हुए स्वातंत्र्य और गौरव को पुनः प्राप्त करने की भावना यहाँ है. इन कविताओं में ध्वंस के स्थान पर निर्माण के भव्य चित्र है. जिससे देश के नवयुवकों को भी कर्मण्यता की प्रेरणा मिली. आधुनिक युग के कवियों ने गुप्त और राजपूत काल के वीरों की देश भक्ति का यशोगान किया.

" रंग में भंग " में चितौड़ का राजकवि आत्महत्या कर लेता है. बलिदान की भावना से ओतप्रोत कवियों ने भी मातृभूमि के लिए उत्सर्ग हो जाने में जीवन को सार्थक माना है. इन कवियों में कर्मचेतना तथा आशा है. वे सच्चे अर्थों में राष्ट्रीय चेतना के कवि है. वे निराशावादी या

पलायनवादी नहीं है. उन्होंने स्वराज्य के लिए बढ़नेवाले लोगों को प्रेरित किया है.

" रंग में भंग" चारणों की गाथाओं के आधार पर लिखी गई कृति है. इसमें यथार्थ और आदर्श दोनों हैं. इसमें एक ओर राजपूत सरदारों के अहंकार से प्रेरित होकर तलवारें खीचीं जाती है तो दूसरी ओर अपने आन-बान- मान की रक्षा के लिए शरीर को होम दिया जाता है. यहाँ कवि का आदर्श व्यंजित हुआ है. यह रचना जितनी कारुणिक है उतनी ही उपदेश-पूर्ण भी है.

" रंग में भंग " में राणा लाखा दुर्ग को तोड़ने की प्रतिज्ञा करता है. दुर्ग को तोड़े बिना अन्न- जल को ग्रहण नहीं करने की प्रतिज्ञा करता है. यहाँ बलिदान की भावना द्रष्टव्य है. कृत्रिम दुर्ग बनवाया जाता है और उसे तोड़ने के लिए कहा जाता है. हाड़ा कुंभ उस कृत्रिम दुर्ग की रक्षा करता हुआ वीरगति प्राप्त करता है. उसके लिए अपनी मातृभूमि का अपमान असह्य था. वीर हाड़ा कुम्भ ने माता और मातृभूमि को स्वर्ग से भी श्रेष्ठ माना है.

" स्वर्ग से भी श्रेष्ठ जननी जन्म- भूमि कही गई,
सेवनीया है सभी की वह महा महिमामयी ।
फिर अनादर क्या उसीका मैं खड़ा देखा करूँ ?
भीरु हूँ क्या मैं अहो ? जो मृत्यु से मन में डरूँ ? "*

वह मातृभूमि की नकली प्रतिमा को भी नष्ट करने देना नहीं चाहता.

" तोड़ने दूँ क्या इसे नकली किला मैं मान के,
पूजते हैं भक्त क्या प्रभु- मूर्ति को जड़ जान के ? " 1

" है न कुछ चितोर यह, बूँदी इसे अब मानिये,
मातृ-भूमि पवित्र मेरी पूज्यनीया जानिए ।

---

1. रंग में भंग, पृ. 32

कौन मेरे देखते फिर नष्ट कर सकता इसे ?
मृत्यु माता की जगत में सह्य हो सकती किसे ? "[1]

" यदपि कृत्रिम रुप में वह मातृभूमि समक्ष है,
किन्तु लेना योग्य क्या उसका न मुझको पक्ष है ?
" जन्मदात्री, धात्रि ? तुझको उॠण अब होना मुझे,
कौन मेरे प्राण रहते देख सकता है तुझे ?
मैं रहूँ चाहे जहाँ, हूँ किन्तु तेरा ही सदा,
फिर भला कैसे न रक्खूँ ध्यान तेरा सर्वदा ? "[2]

आधुनिक युग के कवियों ने नारी के त्यागमय जीवन और उसके सतीत्व को आदर की दृष्टि से देखा हैं. " रंग में भंग " में लालसिंह की पुत्री अपने पति की मृत्यु के बाद सती हो जाती है. द्विवेदीयुग की नारी सती सीता और सावित्री की भाँति वन्दनीया है.

विकट भट

" विकट भट " ऐतिहासिक आख्यान है. यह रचना राष्ट्रीय भावना से अनुप्राणित है. द्विवेदीयुग के कवियों ने देश भक्ति की भावना का और अतीत का गौरव-गान किया है.

मध्ययुग में विदेशी आक्रान्ता के विरुद्ध लड़नेवाले राजपूत, वीर, देश भक्त थे. इस संघर्ष की कविता देश भक्ति ही कहलायेगी. वैयक्तिक शौर्य जो अपने व्यक्तित्व से सम्बद्ध हितों की रक्षा के लिए प्रदर्शित होता है, वह देश भक्ति नहीं है. वीरगाथा काल के राजपूत राजाओं और सामन्तों का शौर्य प्रायः वैयक्तिक शौर्य ही था, वह अपने व्यक्तिगत गौरव अथवा अपने राज्य या अपने राजा के निमित्त प्रदर्शित किया जाता था. राजा और सामन्त आपस में एक दूसरे को ऐसा शत्रु मानते थे जैसा विदेशी आक्रांता

1. रंग में भंग, पृ. 32
2. वही, पृ. 29

को . धर्म एक ऐसी इकाई थी जो भिन्न-2 राजाओं को संगठित कर सकती थी, " परन्तु देश जैसी कोई संगठित इकाई नहीं थी. " [1] अर्थात , " उस युग में राष्ट्रीयता की भावना हिन्दुत्व से आगे नहीं बढ़ सकी थी और उसका यह रुप शताब्दियों तक ऐसा ही बना रहा. " [2] परन्तु यह भावना रीतियुग में श्रृंगार की सहस्त्रधारा में विलीन हो गई. आधुनिक राष्ट्रीयता का प्रथम उत्थान सन 1857 के विद्रोह से हुआ. यह विद्रोह अंग्रेजों के विरुद्ध था. सन सत्तावन से राष्ट्रीयता का आरम्भ हुआ. अब राष्ट्रीयता प्रदेश अथवा धर्म संप्रदाय से निकलकर समग्र देश तक फैल गई. सन सत्तावन का विप्लव विफल हो गया परन्तु वह एक राष्ट्रीय चेतना छोड़ गया. जिससे अनेक विद्वान प्रभावित हुए. विदेशी दासता आत्म सम्मान के लिए घातक थी. इसको अभिव्यक्त करने का उनमें आत्मबल हो या न हो लेकिन उनको इसकी ग्लानि अवश्य थी. इसकी पूर्ति के लिए वे भारत के प्राचीन गौरव का गान करते थे. परिणामस्वरुप देश में पुनरुत्थान का आंदोलन शुरु हुआ. इसका नेतृत्व राजा राममोहनराय , परमहंस, विवेकानन्द आदि ने किया. इस आंदोलन ने राजनीतिक क्षेत्र से अपने को अलग रखा था. परन्तु इस सीमित क्षेत्र में भी देश भक्ति की भावना को अभिव्यक्ति के लिए अवकाश था. इस युग की राष्ट्रीयता मूलतः हिन्दू राष्ट्रीयता थी. इस युग की देश भक्ति में प्राचीन का गौरव और विदेशी सभ्यता के प्रति घृणा प्रदर्शित की गई. वेद, रामायण, महाभारत, चन्द्रगुप्त, अशोक आदि का गान और वर्तमान अधःपतन की ओर निर्देश किया गया. उस समय एक ऐसी चिन्ताधारा भी थी जो समन्वय पर बल देती थी. उसमें हिन्दू, मुसलमान, पारसी आदि सभी धर्मों और सम्प्रदायों के लोगों के लिए स्थान था. जो भारत को इन सभी की मातृभूमि मानकर विदेशी राज्य के विरुद्ध मोरचा डालने के प्रयत्न में थी. इसकी प्रतीक इंडियन नेशनल कांग्रेस थी. परन्तु उसमें इतनी शक्ति नहीं थी. तृतीय उत्थान में गांधीजी

---

1. आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ- डा० नगेन्द्र, पृ. 20
2. वही, पृ. 20

के हाथ में कांग्रेस का नेतृत्व आया. अब उसने शक्ति प्राप्त कर ली थी. अब हिन्दुस्तान एक इकाई बन गया था. भौतिक बल की अपेक्षा आत्मिक बल को महत्व दिया गया. " भौतिक बल से आत्मिक बल का प्रभाव कहीं अधिक है. यह समझने में भारत जैसे देश को देर नहीं लगी, और वह मारकर नहीं मर कर विजय प्राप्त करने के लिए उत्साहित होने लगा. इस प्रकार आधुनिक युग की कविता में क्रोध नहीं है, आक्रोश है. फलतः इस वीर रस का सहचरी करुण है, रौद्र नहीं. " [1] देश के नवयुवकों को निराशा और विषाद का परित्याग कर कर्मण्यता की प्रेरणा मिली. इन कविताओं का आधार आस्तिकता है, अतएव इनमें आग और गरल नहीं है, एक भव्य दीप्ति है. " [2] गुप्त और राजपूत काल के वीरों की देश भक्ति का यशोगान किया. अतीत का गान गाया. जिसमें आर्य- संस्कृति का जयजयकार है. सन् बैंतालीस से पराजय और बलिदान की विजय हुई. अहिंसा और सत्याग्रह से स्वतंत्रता मिली लेकिन भीषण नर- संहार हुआ. राजपूतों की वीरता से वर्तमान की प्रजा को प्रेरणा मिली.

" विकट भट " में जोधपुर के राजा विजयसिंह और सामन्त देवीसिंह की कथा है. देवीसिंह अपनी आन की रक्षा करता हुआ मर जाता है. उसका पुत्र सबलसिंह भी मर गया. दोनों ने अपने प्राणों की आहुति दी. पिता की मृत्यु के पश्चात् सवाईसिंह आया. लेकिन उससे प्रभावित होकर विजयसिंह ने उसको सामंत बनाया. सवाईसिंह की नहीं देवीसिंह की जीत हुई. उसके बलिदान से सवाईसिंह को विजय मिली. यह विजय भी देवीसिंह की विजय थी. उसने गौरव की रक्षा की और स्वाभिमान को महत्व दिया. अंग्रेजों ने भी भीषण नर-संहार किया था. लेकिन भारतीय प्रजा ने इसको हँसते हुए सहा. इसका परिणाम भारत की विजय से आया. यहाँ भी अंतमें सवाई-सिंह को सामंत बनाया गया. देवीसिंह और भारतीय जनता देश के लिए मर

---

1. आधुनिक हिन्दी कविता की काव्य प्रवृत्तियाँ- डा० नगेन्द्र- पृ. 27

2. वही, पृ. 27

280

मिटे. इस प्रकार कवि ने राजपूतों की गौरव- गाथा का वर्णन किया है. वे अपनी आन एवं मान को महत्व देते थे. इसकी रक्षा करते हुए अपने प्राणों की आहुति देते थे. अतीत कालीन राजपूतों के शौर्य, वीरता का वर्णन किया है. जिससे वर्तमान युग की प्रजा में भी वीरता, शौर्य की भावना पैदा हो. प्राचीन युग का गान करते हुए कवि ने वर्तमान को प्रेरणा दी है. देवीसिंह और सबलसिंह ने अपने बलिदान के द्वारा भविष्य की जनता को भी बलिदान देने की प्रेरणा दी है. " अतीत के गौरवमय पृष्ठ पतित जाति को उद्बोधन प्रदान करने के लिए उसके भीतर की हीनता की भावना को दूर करने के लिए देश के उद्धार के लिए सक्रिय होने की प्रेरणा देने के लिए अनावृत्त होते हैं. इन सबका व्यापक प्रभाव देश की राष्ट्रीय चेतना पर होता है और वह उद्बुद्ध होती है. इस दृष्टि से ही हिन्दी काव्य में अतीत का गौरव गीतों में फूट पड़ा था । " [1]

गुरुकुल

सन 1924 में गांधीजी ने साम्प्रदायिक कटुता को मिटाने के लिए इक्कीस दिन के उपवास किये और कविवर गुप्तजी ने लिखा -

" हिन्दू मुसलमान दोनों अब
छोड़े वह विग्रह की नीति । " [2]

गांधीजी मानते हैं कि सत्याग्रही को सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य और अहिंसा जैसे पाँच व्रतों का पालन करना चाहिए. अस्तेय सत्याग्रही का दूसरा व्रत है. अस्तेय, अर्थात चोरी न करना. उनकी दृष्टि में परधन था. मैथिलीशरण गुप्त के " गुरुकुल " के गुरुओं का भी यही कहना है -

" सावधान, परधन है पाप,
भिक्षुक न हो, बनो व्यवसायी,
करो कमाई अपने आप । " [3]

---

1. आधुनिक हिन्दी काव्य में राष्ट्रीय चेतना का विकास- डा० सिताराम पाठक, पृ. 132
2. गुरुकुल, उपोद्घात, पृ. 31. 3. वही, पृ. 47

281

सत्याग्रही धन की इच्छा नहीं रखते. वे मानते हैं कि अन्य लोगों को भी धन से लाभ होना चाहिए.

" गुरुकुल " के गुरु रामदास कहते है--

" धन्य तुम्हारी एक भेंट यह,
हम दो दो जन हुए निहाल,
भाई, इसे न भूलो- लक्ष्मी
चलती फिरती है चिरकाल ।
धन का लाभ सही है - उससे
पावें जितने जन परितोष " [1]

गांधीजी के मतानुसार स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए बंदी होने में महत्ता है. वैसे ही " गुरुकुल " के गुरु हरगोविन्द ने भी बंदी होने में अपनी महत्ता दिखाई है.

" यह निःशस्त्र युद्ध है अपना,
क्रोध- जयी निष्क्रिय- प्रतिरोध,
शारीरिक संघर्ष सहज है,
कर लूँ प्रथम मनोबल- बोध ।
समझो तुम- हरि के मन्दिर में
जाता हूँ मैं स्वयं सतृष्ण । " [2]

गुप्तजी ने गांधीजी की भाँति अस्पृश्यता-निवारण को बल दिया है. वे " गुरुकुल " में लिखते हैं-

" परम पिता के पुत्र सभी हम ,
कोई नहीं घृणा के योग्य,
भ्रातृभाव पूर्वक रहकर सब
पाओ सौख्य-शान्ति आरोग्य । " [3]

---

1. गुरुकुल, पृ. 58
2. वही , पृ. 73
3. वही , पृ. 43

282

सिद्धराज

" सिद्धराज " एक ऐतिहासिक कृति है. इसमें कवि ने बारहवीं शती के वीरों की ओजपूर्ण गाथाओं का वर्णन किया है. अर्थात्, इसका कथानक ऐतिहासिक है. फिरभी कवि ने अपनी कल्पना के द्वारा मौलिकता का परिचय दिया है. कवि ने इस पुस्तक के " निवेदन " में लिखा है कि इसकी घटनाएँ ऐतिहासिक हैं किन्तु उनका क्रम संदिग्ध है. इसको कवि ने अपनी सुविधा के अनुसार प्रस्तुत किया है. जो प्रसंग काल्पनिक हैं वे आनुषंगिक हैं. अर्थात्, इन प्रसंगों से ऐतिहासिकता में कोई बाधा नहीं आई है.

रानकदे- जयसिंह का प्रेम- प्रसंग इतिहास पर आधारित है. किन्तु अन्य प्रसंग काल्पनिक हैं- जैसे मृतप्राय रानकदे के जड़ से शरीर को छूना, जगदेव का नाटकीय प्रवेश और जयसिंह- जगदेव का वाक् युद्ध. जयसिंह रानकदे का हाथ पकड़ लेता है तब उसे वह हाथ मृतप्राय प्रतीत हुआ-

" ऐसा नहीं हो सकता, ओ तू निज निधि मैं '
देखूँ नहीं मुझे कौन रोकता है तुम्हें पाने से ' "
हो गई विमुख सती संकुचित भाव से,
पागल की भाँति राजा धरने चला उसे ।
छोड़ दिया किन्तु हाथ उसने पकड़के,
जीवित का हाथ न हो जैसे वह मृत का । " [1]

तीर्थंकर निषेध का प्रसंग ऐतिहासिक है. लेकिन माता-पुत्र को नाटकीय परिस्थिति में बंदी बनाना और माता के कथन में मौलिकता है. इस प्रसंग के द्वारा ऐतिहासिकता की रक्षा हुई है और प्रसिद्ध घटना पुष्ट हुई है.

अर्णोराज कांचनदे का विवाह प्रसंग भी इतिहास से लिया गया है. अर्थात् यह प्रसंग भी इतिहास की देन है. लेकिन इसके प्रस्तुतिकरण में मौलिकता है.

---

1. सिद्धराज, पृ. 79-80

283

" पहुँची परन्तु ज्यों ही मन्दिर में सुन्दरी
दीखा आप अर्णोराज सम्मुख अलिन्द में,
लौटा जा रहा था देव- दर्शन जो कर के,
तद्गत हो मानो देव हो उठा था आप भी ।
ललित- गभीर, गौर, गौरव का गृह-सा,
एकाकी विलोक जिसे गरिमा ने भेंटा था ।
आडम्बर- शून्य शुद्ध केवल स्वतः - स्वयं ।
तो भी भय-हीन मानो अपने विषय में ।
उत्तरीय ओढ़े और पीताम्बर पहने ।
झूलती गले में फूल माला थी प्रसाद की ।
संकुचित होके कहाँ जाती राजनन्दिनी,
बन्दी के समक्ष स्वयं वन्दिनी-सी हो उठी ।
आके जड़ता ने उसे जकड़ लिया वहीं,
स्तम्भ वह भी था, अवलम्ब लिया जिसका । ." [1]

कवि ने इतिहास का आधार लिया है. किन्तु, कृति को इतिहास होने से बचाया है. यह कृति मौलिक प्रसंगों से पूर्णतः सज्जित है.

" सिद्धराज " का वृत्त ऐतिहासिक है. पर उपर्युक्त अनुभावों का विवरण तो किसी भी इतिहास में नहीं मिल सकता. इसकी योजना कवि ने अपनी कल्पना द्वारा की है और यह योजना भाव को उद्बुद्ध करती है." [2]

" सिद्धराज " के पात्र तो मानव है. अमानवीय पात्रों में मानवीयता का समावेश करते हैं. मानवीय पात्र ही मनुष्य पर कुछ प्रभाव डाल सकते हैं. अलौकिक शक्ति सम्पन्न चरित्र पाठक को विस्मित भले ही कर दें- किन्तु

---

1. सिद्धराज, पृ. 97-98
2. गुप्तजी की काव्य साधना, डा० उमाकान्त, पृ. 98

वे उसे प्रभावित एवं प्रेरित नहीं कर सकते. डा० अरविन्द जोशी के मतानुसार " सिद्धराज " में राजा- प्रजा, सर्व-धर्म, एकता, सांस्कृतिक समन्वय, अहिंसक राष्ट्र की स्थापना आदि का आयोजन गांधी विचारधारा के अनुरूप ही हुआ है. "[1]

गांधीजी की भाँति गुप्तजी ने भी उपवास को महत्व दिया है. " सिद्धराज " की राजमाता ने इस प्रकार उपवास की महत्ता सिद्ध की है-

" -------- चोरों और चित्त के
कूड़ा और कर्कट कटठा जब होता है,
तब जठराग्नि की सहायता से उसको
दग्धकर आत्मशुद्धि पाता उपवासी है -
साधारण अग्नि में ज्यों सोना शुद्ध होता है । "[2]

" अर्जन और विसर्जन " में गुप्तजी ने सीरिया की राजधानी दमिश्क पर अरबों के आक्रमण का वर्णन किया है. इस युद्ध में दमिश्क का रक्षण संभव नहीं था क्योंकि अरब उसे जीत लेना चाहते थे. गुप्तजी ने इस ऐतिहासिक कथा में जोनस और इउडोसिया की प्रेम घटना को जोड़ दिया है. " विसर्जन " की घटना इतिहास से अलग है. ऐसा लगता है कि यह कवि की अपनी मौलिक उद्भावना है.

गुप्तजी गांधी विचारधारा से प्रभावित हुए हैं. देश भक्ति की भावना " उनकी अर्जन और विसर्जन रचना में भी व्यक्त हुई है. स्वाधीनता के लिए राष्ट्रपिता ने अपने प्राणों की बाजी लगा दी. निस्सन्देह इसके सामने प्राणों का कोई मूल्य नहीं होता -

" स्वतन्त्रता के अर्थ हमारे
निकट कौन सा मूल्य महान '

---

1. गांधी विचारधारा का हिन्दी साहित्य पर प्रभाव, डा० अरविन्द जोशी, पृ. 149
2. सिद्धराज, पृ. 22-23

धन क्या, यह जीवन भी अपना
कर दें हम उस पर बलिदान ' " [1]

अभिव्यक्ति पक्ष

भारतेन्दुजी ने गद्य के क्षेत्र में खड़ी बोली को सम्मति दी थी. पाठकजी और द्विवेदीजी के मतानुसार गद्य तथा पद्य की भाषा एक ही होनी चाहिए. यही कहा जा सकता है कि जो कार्य गद्य के क्षेत्र में भारतेन्दु जी ने किया वही पद्य के क्षेत्र में गुप्तजी ने. श्रीधर पाठक ने खड़ी बोली को कर्णकटु आदि दोषों से मुक्त की. लेकिन ब्रजभाषा की पुरानी परम्परा से संबंध विच्छेद करने का कार्य भी आसान नहीं था. खड़ीबोली को काव्योपयोगी बनाने के लिए तपश्चर्या की आवश्यकता थी. यह साधना कार्य गुप्तजी ने किया. उनकी प्रथम ऐतिहासिक रचना " रंग में भंग " में खड़ी बोली का विकसित रुप मिलता है. "

" राम नाम ललाम जिसका सर्व- मंगल- धाम है,
प्रथम उस सर्वेश को श्रद्धा- समेत प्रणाम है । " [2]

इन पंक्तियों में खड़ीबोली का सहज, स्वाभाविक प्रयोग हुआ है. डा० ब्रजमोहन शर्मा लिखते हैं कि -" रंग में भंग " खड़ीबोली का प्रथम वास्तविक खण्डकाव्य है. यद्यपि इसमें रीतिकालीन प्रभाव है, भाषा विषयक दोषों की भरमार है पर भाषा को एक सुनिश्चित दिशा निर्दिष्ट करने के उपलक्ष्य में यह विशेष स्थान का अधिकारी है. " [3]

" विकट भट " में शुद्ध खड़ी बोली का प्रयोग हुआ है. " रंग में भंग " " जयद्रथ-वध ", " पंचवटी " के बाद खडीबोली का वास्तविक स्वरुप

---

1. अर्जन और विसर्जन, पृ. 28
2. रंग में भंग, पृ. 3
3. कविवर मैथिलीशरण गुप्त और साकेत- ब्रजमोहन शर्मा, पृ. 46

" विकट भट " में मिलता है. इस काव्य की भाषा ओजपूर्ण एवं प्रभावोत्पादक है.

" गुरुकुल " शुद्ध खड़ी बोली में लिखा गया है. इसमें यथास्थान कवि ने तत्सम, प्रान्तीय एवं उर्दू शब्दों का भी प्रयोग किया है. गुप्तजी के मतानुसार भाषा को जनप्रिय बनाने के लिए दूसरी भाषाओं के शब्दों का भी प्रयोग होना चाहिए. उन्होंने लिखा है " " अच्छे से अच्छे शब्द को प्रयोग में न लाइए तो वह कुछ दिनों में शिष्ट न रह जाएगा और साधारण शब्द भी व्यवहार में न आने से कुछ दिनों में विशिष्ट बन जाएगा. " [1] इस कृति में गुप्तजी ने पूर्ववर्ती रचनाओं के शब्दों का प्रयोग किया है. अतः यही कहा जा सकता है कि भाषा की दृष्टि से यह काव्य उनकी पूर्ववर्ती रचनाओं के ही समान है.

" सिद्धराज " में खड़ीबोली का उत्कृष्ट रुप मिलता है. यह रचना कला-शिल्प की दृष्टि से भी श्रेष्ठ है. इसमें भाषा का प्रौढ़ एवं प्रांजलरुप मिलता है. इस खण्डकाव्य में आदि से अंत तक भाषा सौन्दर्य का निर्वाह हुआ है. गुप्तजी ने तुकों के प्रति अपना आग्रह व्यक्त किया है जिससे कहीं कहीं काव्यत्व क्षीण हो गया है.

" अर्जन और विसर्जन " अभिव्यक्ति प्रणाली एवं भाषा की दृष्टि से श्रेष्ठ रचना है. इस खंडकाव्य की भाषा प्रौढ़ एवं परिमार्जित है. " अर्जन " की भाषा " विसर्जन " की भाषा से अधिक शुद्ध एवं समर्थ है. इसकाव्य में कवि की कलाचातुरी की प्रतीति होती है.

मुहावरें -

जहाँ विवाह का हर्ष था वहाँ वर-वधू पक्ष के बीच लड़ाई होने से वे लोग दुःखी हो गये. उनके सुख का अंत हो गया.

" रस में विघ्न पड़ा हा ! दुख जगा सुख सो गया । " [2]

---

1. गुरुकुल, उपोद्घात, पृ. 13

2. रंग में भंग, पृ. 15

287

अपनी पुत्री को आश्वासन देते हुए लालसिंह ने कहा कि जो होनेवाला होता है वह होकर ही रहता है-

" भाल- लिपि मिटती नहीं " [1]

सवाईसिंह की वाक्-छटा देखकर राजा विजयसिंह को इस बात की प्रतीति हुई कि मानो देवीसिंह जीवित होकर आ गया हो.

" मरके भी जीवित है " [2] जीवन-दिनेश अस्त हो गया " [3] " छिन्न-भिन्न करके " [4] " दाँत खट्टे हो जावें " [5] आदि मुहावरों का भी " विकट भट " में प्रयोग किया गया है.

निम्न पद्य में " समेट धरना " बुन्देलखंडी मुहावरा है.

" कंकण नहीं, मुझे तो कर दो,
जो बैरी को धरे समेंट । " [6]

निम्न पंक्तियों में राजस्थानी भाषा में प्रचलित मुहावरों का प्रयोग हुआ है. जैसे " साका होना " इसका प्रयोग वीरतापूर्वक बलिदान के अर्थ में हुआ है. ऐसे प्रान्तीय शब्दों और मुहावरों के प्रयोग से खड़ीबोली सशक्त और समृद्ध बन पड़ी है.

---

1. रंग में भंग, पृ. 19
2. विकट भट, पृ. 16
3. वही, पृ. 6
4. वही, पृ. 7
5. वही, पृ. 10
6. गुरुकुल, पृ. 125

" आज्ञा दो गुरुदेव दयाकर,

हो जावे बस सांका एक." [1]

इसके अलावा " गुरुकुल " में " पटीर घिसना ", " काठ मारना ", कान भरना ", " रपट पड़े की हर गंगा ", आदि मुहावरों का यथास्थान प्रयोग हुआ है.

जन्मभूमि के लिए मृत्यु को भेंटना.

" वीर गति पावें । " [2]

" सिद्धराज " में कहीं-2 गुप्तजी ने ब अंग्रेजी तथा उर्दू के मुहावरों का हिन्दीकरण किया है -

" नाकों चने चबाने पड़े थे. और फिर भी

निष्कृति के हेतु पड़े दाँतों तृण दाबने । " [3]

लोकोक्तियाँ
=:=:=:=:-

निम्न पंक्ति में कहने का तात्पर्य यह है कि वचन में बाण से कई गुनी अधिक शक्ति है. मनुष्य के मनपर बाण से भी अधिक वचन का घाव गहरा होता है.

" बाण से भी वचन का होता भयंकर घाव है । " [4]

" किन्तु जीने की अपेक्षा मान पर मरना भला । " [5] आदि लोकोक्तियाँ भी प्रयुक्त हुई है.

सवाईसिंह अपनी माता को कहता है कि मेरा उत्तर सुने बिना मरना नहीं. अर्थात प्राण का त्याग नहीं करना.

" छोड़ना न नश्वर शरीर यह अपना " [6]

---

1. गुरुकुल, पृ. 72
2. सिद्धराज, पृ. 41
3. वही, पृ. 55
4. रंग में भंग, पृ. 30 14
5. वही, पृ. 30
6. विकट भट, पृ. 9

289

" रहता है मेरी कटारी की पतली में ही,
मैं यों " नवकोटी मारवाड़ " को उलट दूँ । " [1]

जैसी लोकोक्तियाँ भी हैं.

निम्न पद्य में यह लोकोक्ति है कि सर्प सीधा होकर भी टेढ़ी गति का त्याग नहीं करता है. यहाँ " द्विजिह्य " श्लेषात्मक शब्द है.

" पर द्विजिह्व सीधा होकर भी
नहीं छोड़ता है गति वक्र " [2]

" आचारों के आडम्बर में बँधे न अधिक हमारे हस्त । " [3]

" अन्न छोड़कर पत्थर खाव " [4]

" भाल पीटते हैं अपना ही
क्लीब-कर्महीनों के हस्त " [5]

आदि लोकोक्तियों का भी यथास्थान प्रयोग हुआ है.

जीत होने के पश्चात लड़ाई बंद करनी चाहिए.

" म्यान करो खड्ग अब अपना " [6] लोहे से लोहा कटता है " [7] "ईश्वर की इच्छा शिरोधार्य करके ही मैं जा रही हूँ " [8] आदि लोकोक्तियाँ का " अर्जन और विसर्जन " में प्रयोग हुआ है.

---

1. विकट भट, पृ. 4
2. गुरुकुल, पृ. 232
3. वही, पृ. 139
4. वही, पृ. 41
5. वही, पृ. 147
6. अर्जन और विसर्जन , पृ. 11
7. वही, पृ. 27
8. वही, पृ. 14

290

सूक्तियाँ

हाड़ा कुम्भ नहीं चाहता था कि कृत्रिम दुर्ग को भी राणा तोड़े. क्योंकि जन्म-भूमि स्वर्ग से भी महान है.

" स्वर्ग से भी श्रेष्ठ जननी जन्म-भूमि कही गई " [1]

" वन्हि से भी विरह का होता अधिक उताप है " [2]

आदि सूक्तियाँ भी मिलती हैं.

देवीसिंह और जैतसिंह की मृत्यु के बाद दरबार में सब लोग मौन होकर बैठे थे. उस समय वे शांत रात्रिमें तारों की भाँति दिखाई दे रहे थे.

" मानो स्तब्ध रजनी में तारागण व्योम के । " [3]

राजा की कन्या रत्नदेवी को कुम्हार दम्पति ने पाला. अर्थात्, बालक को प्रेम की अधिक जरूरत है, सुवर्ण की नहीं.

" शिशु पलते हैं प्रेम से ही, नहीं हेम से । " [4]

जब नरवर्मा की मृत्यु हुई तब सिद्धराज ने लड़ाई रोक दी. इस समय पर शत्रु ने भी मित्र की भाँति बर्ताव किया.

" शत्रु और मित्र दोनों एक- से हैं अन्त में । " [5]

" मेरे शिवशंकर भी मेरे घर आयेंगे. " [6] आदि सूक्तियों का प्रयोग हुआ है.

इउडोसिया कहती है कि अधर्म से किसी भी चीज का अर्जन नहीं होता.

" फलता नहीं है कभी अर्जन अधर्म का " [7]

---

1. रंग में भंग, पृ. 32
2. वही, पृ . 22
3. विकट भट, पृ. 12
4. सिद्धराज, पृ. 59
5. वही, पृ. 34
6. वही, पृ. 15
7. वही, पृ. 15

291

संवाद योजना
=========

गुप्तजी के संवादों में केवल नाटकीयता का ही गुण नहीं है बल्कि शील-निरुपण, रसात्मकता, मार्मिकता, प्रत्युत्पन्नमतित्व आदि गुण भी उभर आये हैं.

" रंग में भंग " के संवाद अभिधात्मक है.

" भाल-लिपि मिटती नहीं, हे पुत्रि ! अब धीरज धरो,
अनल में जलकर हमारा घर अँधेरा मत करो ।
नेत्र-तारा की तरह बूँदी रहो, अथवा यहाँ,
भजनकर भगवान का दो दान,जो चाहो जहाँ ।[1]

तब पुत्री ने कहा कि-

" तात के वात्सल्य का मुझको बड़ा अभिमान है,
और मेरी भक्ति को भी जानता भगवान है ।
किन्तु अब इच्छा नहीं है देह लालन की मुझे,
तात ! आज्ञा दो दयाकर धर्म-पालन की मुझे ।[2]

" विकट भट " के संवाद अत्यंत सजीव हैं. निम्न प्रसंग में ऐसा लगता है कि वातावरण मानो सामने प्रत्यक्ष हो रहा है.

बोला सरदार- " क्षमा पृथ्वीनाथ, यह क्या ?
ऐसा कौन होगा कि जो रूठ जाय आपसे ?
बोले फिर भूप - " तो भी पूछता हूँ, क्या करे ?
" जीवन से हाथ धोवे और मरे मुझसे । "
देवी सिंह ने यों कहा- फिर भूप बोले यों -
और तुम रूठ जाओ तो बताओ, क्या करो ? "
देवी सिंह चौंक- क्षमा पृथ्वीनाथ, यह क्या ?
आपसे मैं रूठ जाऊँ- ऐसा भाव क्यों हुआ ? "[3]

~~1. अर्चन और विसर्जन, पृ. 15~~

1. रंग में भंग, पृ. 19

2. वही, पृ. 19

3. विकट भट, पृ. 3

292

सम्प्रेषणीयता – कभी कभी वाक्यों में शब्दों का अत्यन्त सीधा सादा प्रयोग होता है लेकिन वे सम्प्रेषणीयता की शक्ति से संपन्न होते हैं . जैसे-

" पृथ्वीनाथ, मैं जो रुठ जाऊँ " कहा वीर ने-
" जोधपुर की तो फिर बात ही क्या, वह तो
रहता है मेरी कटारी की पुतली में ही,
मैं यों " नव कोटी मारवाड़ " को उलट दूँ । "
कहते हुए यों ढाल सामने जो रक्खी थी,
बायें हाथ से उन्होंने उलटी पटक दी । " [1]

" गुरुकुल " के संवाद भी अत्यंत सजीव है-

" पंथ पंथ ही है " गुरु बोले -
" एक ठौर सबका गन्तव्य,
गति है अपनी मतिके ऊपर,
यही एक सौ का मन्तव्य । "
बादशाह ने कहा- " ठीक है,
मेरा मजहब है इस्लाम,
लिखें हमारे हजरत का भी
गुरू " ग्रन्थ साहब " में नाम ! "
लिख सकता हूँ यदि मेरा प्रभु
मुझे प्रेरणा करे पुनीत,
लिख न सकूँगा किन्तु किसीके
तोष-हेतु या भय से भीत । " [2]

" सिद्धराज " में जगदेव-जयसिंह संवाद कार्य-प्रेरक है. सिद्धराज जयदेव को कहता है कि -

---

1. विकट भट, पृ. 4-5

2. गुरुकुल, पृ. 65

" अब रक्तपात व्यर्थ है ।
बन्दी जगद्देव, तुम्हें मार सकता हूँ मैं,
तो भी हार मानना जो अस्वीकार है तुम्हें,
तो तुम जियो हे वीर, विचरो स्वतन्त्र हो ।
फिर भी बता दूँ, हम बैरियों के बदले
आप निज बन्धुओं से सावधान रहना । "
" महाराज ! " लज्जित स्वयं ही यह कहके
वीर जगद्देव हुआ । बोला वह फिर भी -
" बैरियों से जीने की अपेक्षा आप अपने
बन्धुओं से मरना भी अच्छा मानता हूँ मैं "
" अच्छी बात ! " बोला सिद्धराज- " इन्हें छोड़ दो । " [1]

तब जगद्देव नत मस्तक खड़ा रहा और बोला -

" सचमुच महाराज, आज महाकाल ने
आपको प्रसाद दिया, इच्छा यही देवी की ।
भय से पराजय न मानूँ, किन्तु आपके
वीरोचित विनय-विवेक व्यवहार से
हार मानता हूँ, और होता हूँ अधीन मैं । "

सिद्धराज ने कहा-

वीर, इस दीर्घ अभियान का
मैंने मूर्तिमान महालाभ तुम्हें पा लिया ।
बाधक थे मेरे तुम जैसे यहाँ जय के
आकर्षक हो रहे थे वैसे ही हृदय के । " [2]

इन पंक्तियों में कांचनदे, अर्णोराज तथा काकभट के मधुरालाप से विदग्धता की व्यंजना हुई है. परुष प्रसंग संवाद--

---

1. सिद्धराज, पृ. 50
2. वही, पृ. 51-52

294

" सावधान, बोला जगदेव घुस घर में -
भार है सती के पर्यवेक्षण का मुझको । "
किससे नियुक्त तुम ? नेता जयसिंह से । "
मैं वह नहीं हूँ ? ------------- । " [1]

अर्जन और विसर्जन

अर्जन और विसर्जन के नाटकोचित संवाद से भाषा सजीव बन पड़ी है.

" जीना चाहता हूँ, मरना मैं नहीं चाहता,
देखा कहाँ मैंने अभी इस भव-धारा को ?
मूल्य क्या है मेरे नवजीवन का, मैं सुनूँ । "
मन से डरता है ? लड़ने चला था क्यों ?
जैसी धृष्टता की, फल वैसा क्यों न भोगेगा ?
वैरी है विधर्मी, नहीं अतिथि हमारा तू,
क्या तुझे खिलाकर पिलावें हम उलटे ? "
" चाहो यदि, दे सकूँगा अच्छा अर्थ दण्ड मैं । "
" अर्थ पीछे- सेनापति बोला कुछ शान्त हो-
" पहले तो धर्म की ही बात कह मुझसे,
मोक्ष है उसीमें । " और काम ? " पूछा बन्दी ने.
" ठहर सुनूँ मैं, मुसलमान बनने को तू
प्रस्तुत है ? " बन सकता हूँ, धर्म वह भी.
किन्तु इउडोसिया से वंचित न होऊँ मैं । "
कौन इउडोसिया ? " भविष्य-वधू मेरी है. " [2]

संक्षेप में यही महा जा सकता है कि संवादों से " उनके काव्य में प्राणवत्ता, सरसता, सजीवता तथा स्थैर्य के साथ लोकप्रियता का भी समावेश हुआ है. संवादात्मक शैली जहाँ पात्र के चरित्र को उभारती है वहाँ

1. सिद्धराज, पृ. 80
2. अर्जन और विसर्जन, पृ.9

वर्ण्यविषय को भी प्राणान्वित कर देती है. इसके अतिरिक्त विषय के प्रति औत्सुक्य, भावमयता, रसात्मकता, रोचकता, मार्मिकता, कथा के विकास एवं पात्र के शील- निरुपण में भी सहायता मिलती हैं. " [1] डा० कमलाकांत पाठक के मतानुसार – " वे संवादों के द्वारा पात्रों के जीवन-दर्शन और चारित्र्य को प्राय: प्रकट करते हैं. उन्होंने कथावस्तु के अप्रधान प्रसंगों को संवादों के द्वारा सूच्य- पद्धति से निरुपित किया है . " [2]

इस प्रकार गुप्तजी की संवाद-शैली अपने युग की अनोखी एवं प्रभावोत्पादक विधा सिद्ध हुई है.

रस- योजना
========

डा० कमलाकान्त पाठकजी का मत है कि " रंग में भंग " में श्रृंगार रस का अच्छा परिपाक नहीं हुआ. तीन बलिदानों के द्वारा इसमें करुणरस की व्यंजना अवश्य हुई है. लेकिन, करुण रस में गुप्तजी की वृत्ति रमी नहीं है जिससे करुण रस का अपूर्ण परिपाक हुआ है. इसमें कहीं-2 वीर रस की नियोजना दृष्टिगत होती है.

" वीर कुम्भ ! विचार ऊँचे हैं तुम्हारे सर्वथा,
किन्तु दोषारोप अब मुझ पर तुम्हारा है वृथा ।
वीर बूँदी के स्वयं मौजूद हो जब तुम यहाँ,
तो कहो, प्रण पालना झूठा रहा मेरा कहाँ ? "
क्रुद्ध हो तब कुम्भ ने शर से उन्हें उत्तर दिया,
किन्तु राना ने उसे झट ढाल पर ही ले लिया ।
फिर वहाँ कुछ देर को पूरी लड़ाई मच गई,
वध किये उस वीर ने मरते हुए भी रिपु कई । " [3]

---

1. मैथिलीशरण गुप्त का खड़ीबोली के उत्कर्ष में योगदान – सहदेव वर्मा, पृ. 343
2. मैथिलीशरण गुप्त: व्यक्ति और काव्य- कमलाकांत पाठक, पृ. 672
3. रंग में भंग, पृ. 29

296

राणा आलम्बन है और हाड़ा कुम्भ आश्रय है. राणा के वचन तथा उनके प्रहार यहाँ उद्दीपन का कार्य कर रहे हैं. कुम्भ ने जो शरसंधान किया तथा उसने अन्य शस्त्रों द्वारा प्रहार किया वही अनुभाव हैं. और यहाँ रोष तथा हर्ष संचारी के रुप में हैं. उत्साह स्थायी होने से यहाँ वीररस की नियोजना हो पाई है.

करुण रस

" जा, बेटा कदाचित सदा के लिए " हाय रे !
करुणा से कंठ भर आया ठकुरानी का ।
जाकर अन्धेरी एक कोठरी में वेग से,
पृथ्वी पर लौट वह रोई ढाड़ मार के,
व्योम की भी छाती पर होने लगी लीक-सी । " [1]

इस पद में कुमार सवाईसिंह आलंबन, ठकुरानी आश्रय हैं, राजा विजयसिंह सवाईसिंह को दरबार में बुलाते हैं और उसके पूर्व में कृत्यों का स्मरण आदि उद्दीपन का कार्य करता है. ठकुरानी वेग से जाती है और पृथ्वी पर लौटकर चिल्लाती है. ये अनुभाव हैं. जबकि दैन्य, विषाद, उन्माद आदि संचारी है. इन अवयवों से स्थायी भाव शोक में परिणत हुआ है.

" गुरुकुल " में काव्यगुण प्रायः क्षीण हैं- रस का एकान्ताभाव न होते हुए भी यह नीरस एवं शुष्क है. वास्तव में कवि की वृत्ति इसमें नहीं रमी. " गुरुकुल " के उपोद्घात में गुप्तजी ने लिखा है कि एक सिक्ख सज्जन की प्रार्थना अथवा अनुरोध पर प्रस्तुत काव्य का निर्माण हुआ है. अभिप्राय यह कि गुरुकुल के प्रणयन में हृदय की सहज प्रेरणा न होकर बाह्य आग्रह है- और हृदयगत प्रेरणा के अभाव में रस सृष्टि हो ही नहीं सकती. बौद्धिकता के प्राधान्य के कारण सूक्तियाँ तो अनेक मिल जाती है, करुणोक्तियाँ एवं वीर घोषणाओं की भी कमी नहीं पर क्षीणता है रस की. " [2] ऐसा ही एक

1. विकट भट, पृ. 9
2. मैथिलीशरण गुप्त- कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता- उमाकांत- पृ. 31

297

उदाहरण प्रस्तुत है--

" आठ सहस्त्र सैन्य जब गुरु के
किन्तु उधर थे बीस सहस्त्र,
तोप, तीर, तलवारों से अब
चला अहर्निश युद्ध अजस्त्र ।
चलतीं इधर उधर से तोपें
गढ़ पर अड़ते दिन में सिक्ख,
और रात में असियाँ चलतीं -
बढ़ कर लड़ते जिन में सिक्ख । " [1]

श्रृंगार रस

" पहुँची परन्तु ज्यों ही मन्दिर में सुन्दरी
दीखा आप अर्णोराज सम्मुख अलिन्द में,
---------- -- -- -----
ललित, गम्भीर, गौर, गौरव का गृह- सा,
एकाकी विलोक जिसे गरिमा ने भेंटा था ।
- - - - - - - - - - - - -
संकुचित होके कहाँ जाती राजनन्दिनी ?
बन्दी के समक्ष स्वयं बन्दिनी-सी हो उठी !
आके जड़ता ने उसे जकड़ लिया वहीं,
स्तम्भ वह भी था. अवलम्ब लिया जिसका !
हो गये अचल एक पल को पलक भी,
किन्तु वह रुप भार कब तक झिलता ?
आहा दूसरे ही क्षण दृष्टि नत हो गई । " [2]

काँचनदे आलंबन और अर्णोराज आश्रय हैं. राजा अर्णोराज का सौन्दर्य,गौरव उद्दीपन है और देवालय उद्दीपन विभाव है. क्रीड़ा, स्तम्भ और जड़ता

1. गुरुकुल, पृ . 158
2. सिद्धराज, पृ. 97-98

संचारी हैं. उसका अपलक दर्शन, कम्प, दृष्टि का नत होना अनुभाव से पुष्ट स्थायी रति से श्रृंगार की नियोजना हुई है.

पूर्वराग -

" और कहीं चित्त नहीं लगता था उसका,
सूना तब छोड़ मन जाता था वहीं-वहीं ।
" आह ! " नींद आई उसे रात बड़ी देर में,
और वह जाग पड़ी बहुत सबेरे ही ।
कौन कहे, उसने क्या स्वप्न देखा सोते में,
आप भी " न जाने " कह मौन वह हो रही । " [1]

हास्य रस

" औषधि का रत्न- पात्र देने चली दादी को,
किन्तु " नहीं " सुन, हँस बोली- " बड़ी मीठी है " [2]

साधारणतः बड़े बच्चों को बहलाया करते हैं लेकिन यहाँ कांचनदे दादी को बहलाती है. अर्थात, यहाँ वैपरीत्य है और इससे ही यहाँ हास्य की परिणति हुई है.

वीर और करुण की मिश्रित भावना निम्न छंद में दर्शनीय है -

" अर्पित है यह देह लो, यहीं ।
आओ वीर, पूरी करो तुम निज वासना । "
विस्मित हो देखा सब लोगों ने, तुरन्त ही
जोनस के आगे वह पक्षिणी- सी आ पड़ी -
अपने करों से छुरी भोंक आप छाती में !
चिल्ला उठा जोनस- " हा मेरी इउडोसिया ! "
आहत अचेत- सा अभागा गिरा आप भी ।

---

1. सिद्धराज, पृ. 95
2. वही, पृ. 87

299

शुष्क सैनिकों के भी दृगों में अश्रु आ गये । " [1]

बिम्ब- विधान

वधू के
विधवा हृदय की पीड़ा का पारावार पराकाष्ठा को पार कर लेता है, तब पीड़ित प्राणी के नेत्रों के आँसू भी सूख जाते हैं. कवि ने तीसरी और चौथी पंक्ति में इसी भावना को व्यक्त किया है. जिससे यहाँ चाक्षुष बिम्ब की प्रतीति हो रही है.

" नारियाँ रनवास में सब रो रही थीं शोक से,
किन्तु बैठी मौन थीं वह भिन्न ही ज्यों लोकसे ।
ज्ञात होता था कि मानों मूर्ति रक्खी है वहाँ,
जल गया अन्तःकरण जब, फिर भला आँसू कहाँ ।[2]

दृश्य बिम्ब -

निम्न पंक्तियों में राणा का भव्य बिम्ब दृष्टव्य है.

" शीश राना का हुआ शोभित मनोहर मौर से.
विविध वस्त्राभूषणों से द्युति मिली अति देह को,
सज चला रसराज मानो छवि-वधू के गेह को । " [3]

निम्न पंक्तियों में " कटारी " शब्द से एक संपूर्ण बिम्ब उपस्थित होता है. इस शब्द के खातिर देवीसिंह एवं सबलसिंह को मरना पड़ा.

" कटारी ' धरा काँपी सदा जिससे '
बिजली की बेटी वह ' भौंह महाकाल की । " [4]

यहाँ हिन्दू- मुसलमान एवं राम- रहीम के द्वारा एक बिम्ब प्रस्तुत हुआ है.

---

1. अर्जन और विसर्जन, पृ. 18
2. रंग में भंग, पृ. 17
3. वही, पृ. 7
4. विकट भट, पृ. 15

" खुदा करे कि मिलें यों ही सब,
हिन्दू- मुसलमान जी खोल ।
राम- रहीम एक हैं, खाली
जुदे जुदे हैं उसके नाम । "[1]

निम्न पद्य में कवि ने ध्वनि- चित्रण के द्वारा एक बिम्ब खड़ा किया है.

" घहरे घन मानों यवनों पर
घुर घुर कर आपड़े बराह,
पानी पड़ने लगा झड़ाझड़,
और हताहत उठे कराह । "[2]

निम्न पद में कवि ने सिद्धराज जयसिंह की विशेषता का वर्णन किया है. इसके द्वारा उन्होंने एक बिम्बात्मक चित्र उपस्थित किया है.

" युवक- उदार-वीर उच्च उदयाद्रि के
शिखर- समान, चित्रभानु- सा किरीट था,
सहज प्रसन्न-मुख, लोचन विशाल थे,
भाल पर भौंहें दृढ़ निश्चय की रेखा-सी.
लाल लाल होठों पर सूक्ष्म मसि- लेखा थी । "[3]

निम्न पंक्तियों में " फूल " के माध्यम से कवि ने इउडोसिया के बिम्ब की योजना की है. इउडोसिया को प्रेम करने से जोनस को युद्ध के सिवा और कुछ नहीं मिला.

" तोड़ एक पाटल- प्रसून दे प्रसाद में,
और कुछ बोले विना बाला विदा हो गई ।
फूल चूमने में चुभा जोनस को काँटा- सा !
सीरियन लोगों के निराशा- निरुत्साह का जोनस प्रतीक-सा था."[4]

---

1. गुरुकुल, पृ. 150
2. वही, पृ. 155
3. सिद्धराज, पृ. 25
4. अर्जन और विसर्जन, पृ. 8

अलंकार विधान

गुप्तजी की इन रचनाओं में अलंकारों की छटा भी यथास्थान दिखाई पड़ती है.

अनुप्रास " भूमि- सुख न सही, मिलेगा स्वर्ग- सुख मुझको अभी,
आर्य- कन्या का अहित कोई न कर सकता कभी ।। " [1]

उपमा " लोक-शिक्षा के लिए अवतार जिसने था लिया,
निर्विकार निरीह होकर नर- सदृश कौतुक किया ।"[2]

उत्प्रेक्षा " बैठ सुन्दर वाहनों पर, पहन पट-भूषण भले,
वर-सहित अगणित बराती प्रेमपूर्वक यों चले -
बैठ चित्र- विचित्र चचल जलधरों पर जगमगे,
चन्द्रयुत नक्षत्र मानो भू- भ्रमण करने लगे ! " [3]

विनोक्ति " प्रथम सोच विचार जो बात है कहता नहीं,
वह विना लज्जित हुए संसार में रहता नहीं ।[4]

उपमा के साथ-2 रूपक का भी निम्न छंद में सुंदर प्रयोग किया गया है.

" प्राण- मोह छोड़ उन मुट्ठी भर वीरों की
टुकड़ी ने झंझा के समान जोधपुर के
घोर दल- बादल को छिन्न- भिन्न करके
और भली भाँति से उड़ा के धुलि उसकी
रण में सबलसिंह- युक्त गति वीरों की-
पाई और मानो स्वर्ग लेकर ही शान्ति ली । " [5]

---

1. रंग में भंग, पृ. 18
2. वही, पृ. 3
3. वही, पृ. 7
4. वही, पृ. 13
5. विकट भट, पृ. 7

सहोक्ति

" क्षत्राणी के अरुण वदन पर
आया एक अलौकिक तेज,
पति के संग चिता भी बहुधा
बनती है सतियों की सेज । " [1]

उल्लेख

" आप देव है, आप देहरा
आप लगाता है पूजा " [2]

निम्न पंक्तियों में विरोधाभास, शब्द-ध्वनन, रुपक, उपमा, वीप्सा आदि अलंकार प्रयुक्त हुए हैं. यहाँ कवि ने संध्या की पृष्ठभूमि देकर शिविर का प्रभापूर्ण चित्र अंकित किया है.

" पाके वीर नारियों का गुल्फ-स्पर्श हींस के,
ग्रीवा-भंग- पूर्वक तुरंग चले नाचते,
× × ×
भालों पर भ्रुकुटि- सुचाप चढ़े आप थे,
दमक रहे थे मुख- दर्पण ज्यों धूप में,
देख सकता था कौन आँखवाला सामने,
झनन झनन नाद भी हो रहा था रथ का । " [3]

" अर्जन और विसर्जन " के निम्न छंद में उपमा- उत्प्रेक्षा का सुंदर प्रयोग हुआ है. जोनस इंडोसिया को देवी के रुप में देखता है. उसे ऐसा प्रतीत होता है मानो अस्तगत सूर्य की कालिमा ने श्वेत वर्ण को तप्त स्वर्ण में बदल दिया हो, वह उसे ऐसी प्रतीत हुई मानो रक्त स्नात चंडी की प्रतिमा हो. तथा वाटिका का वह कुंज उसे चिता पुंज सा भासित होने लगा.

अस्तगत भानु की अरुणिमा ने जिसका,
श्वेत वर्ण बदल दिया है तप्त स्वर्ण में.

---

1. गुरुकुल , पृ. 169
2. वही, पृ. 110
3. सिद्धराज, पृ. 24-25

जान पड़ी रक्त स्नात चंडी मूर्ति भक्त को,

और वाटिका का वह कुंज चिता- पुंज- सा । " [1]

छन्द- विधान

" रंग में भंग " गीतिका छंद में लिखा गया काव्य है. इस छंद में 26 मात्रा रहती है, और अंतमें लघु गुरु और 14 तथा 12 मात्राओं पर यति पड़ती है.

" एक कर नीचा नवाये, एक ऊपर को किये,

एक कर सम्मुख बढ़ाये, एक ग्रीवा पर दिये ।

चौभुजी वह मूर्ति मानो कह रही थी यों अभी-

हो खड़े, ऊँचे चढ़ो, आगे बढ़ो, देखो सभी ।। " [2]

" विकट भट " अतुकान्त शिल्प को ग्रहण करनेवाली गुप्तजी की सर्व प्रथम रचना है.

" और तुम रुठ जाओ तो बताओ, क्या करो ? "

देवीसिंह चौंके- " क्षमा पृथ्वीनाथ, यह क्या.

आपसे मैं रुठ जाऊँ, ऐसा भाव क्यों हुआ ? "

राजा ने कहा कि " मैंने पूछा है सहज ही,

यदि तुम रुठ जाओ तो बताओ, क्या करो ? " [3]

इस छंद में 15 वर्ण रहते हैं. यह अतुकान्त छंद है. जो लय के अनुसार 8, 7 वर्णों पर विराम लेता है.

" गुरुकुल " काव्य वीर छंद में लिखा गया है. यह छंद अश्वावतारी वर्ग का प्रचलित छंद है. इसमें 31 मात्राएँ रहती हैं. जो 16 मात्राओं के बाद विराम लेता है. इसके चरण के अंत में गुरु लघु का अनिवार्यतः प्रयोग होता है.

1. अर्जन और विसर्जन, पृ . 7-8

2. रंग में भंग, पृ. 5

3. विकट भट, पृ. 3-4

" इसका प्रवाह सम-प्रधान है, अतः इसमें भी चौपाई की भाँति सममात्रमैत्री चलती है . " [1]

" काल कृपाण समान कठिन है,
शासक हैं हत्यारे घोर, "
रोक न सका उन्हें कहने से
शाही कारागार कठोर । " [2]

" सिद्धराज " में अतुकान्त छन्दों का प्रयोग किया गया है.

" सुनके तुम्हारा रूप, कल्पना से आँकाथा
व्यर्थ एक चित्र मैंने, तुम तो विचित्र हो !
वस्तुतः सुना था नहीं, जैसा तुम्हें देखा है. " [3]

यह अतुकान्त छन्द 15 वर्णों पर आधारित है. इसमें लय के अनुसार 8, 7 वर्णों पर विराम पडता है. लेकिन " अर्थ की दृष्टि से नवीन अन्तर्यतियों का आयोजन कर लिया गया है. दूसरे चरण का यमक अष्टक को दो यतियों में विभक्त करके वेग उत्पन्न करता है और तीसरे चरण में अनुप्रास, साम्य स्वराघातपूर्वक पाठ के लिए प्रेरित करता है, फलतः नवीन अन्तर्यति आ जाती है. " [4]

" सिद्धराज " में भाव छंद का भी प्रयोग हुआ है.

" घर के निकट कुछ पेड़- पौधे रोपे थे ।
और बना ली थी एक वाटिका- सी उसने ।
गोड़ती थी, सींचती थी आप वह उसको ।
पानी खींचती थी नित्य प्रातःकाल कूप से ।
दायें और बायें घूम घूम झूम झूम के ।
आता लूम लेता हुआ पूर्ण घट नीचे से ।

---

1. आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द-योजना- पुत्तूलाल शुक्ल, पृ . 305
2. गुरुकुल, पृ. 43
3. सिद्धराज, पृ. 64
4. आधुनिक हिन्दी काव्य में छंद-योजना, डा० पुत्तूलाल शुक्ल, पृ. 212

पाती गहरे का रस वह गुणशालिनी ।
राग कह जाता, स्वेद भाग वह जाता था,
यों व्यायाम और काम, संग- संग होते थे । " [1]

भाव छंद 15 वर्णों का छंद है. इस छंद में भाव, चरण के अंत में समाप्त नहीं होता है. बल्कि वह आगामी चरणों के मध्य में और अंतमें पूर्ण होता है. इस प्रकार सम्पूर्ण छंद की लय चरणांत की यति का अतिक्रमण करती हुई गिरि- निर्झर की भाँति प्रवाहित होती है. " [2]

" अर्जन " अतुकान्त छंदों में लिखी गई रचना है और " विसर्जन " तुकान्त छंदों में. " इन चरणों का प्रयोग बिलकुल संस्कृत वृत्तों के समान है. आधुनिकयुग के प्रयोगों में तुकान्त और अतुकान्त के पाठ में कोई लयात्मक अन्तर नहीं पड़ता. और न यति में ही परिवर्तन होता है. " [3]

" प्रथम खलीफा अबूबक्र क्या मदीने में
उत्सुक इसीसे मृत्यु- शय्या पर जीते हैं,
नेत्र मूँदने के पूर्व निज चिर- निद्रा में,
सुन लें विजय- वर्ण जैसे बने कर्णों से । " [4]

यहाँ 15 वर्ण है. यह छंद 8,7 अक्षर पर विराम लेता है.

" विसर्जन " वीर छन्द में लिखी गयी रचना है. यह छंद 31 मात्राओं का छन्द हैं. और इसमें 16 मात्राओं के बाद यति पड़ती है. इसके चरणान्त में गुरु, लघु का प्रयोग होता है.

" राम- राज्य में पद- प्राप्ति का
पाते हैं सब लोग सुयोग,

---

1. सिद्धराज, पृ. 61
2. आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द योजना, डा० पुत्तूलाल शुक्ल, पृ. 393
3. वही, पृ. 393
4. अर्जन और विसर्जन, पृ. 3

किन्तु भुलाकर जयी जनों को
विजित बना जाते हैं भोग ।" [1]

निष्कर्ष रुप से यही कहा जा सकता है कि उपर्युक्त विवेचित कृतियों का अभिव्यक्त पक्ष श्रेष्ठ एवं समुन्नत है.

---

1. अर्जन और विसर्जन, पृ. 19.